सत्यमेव जयते

आध्यात्मिक भमिका पर लिखित लघ निबन्ध

१९६८

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली



पहली बार : १९६८
मूल्य
तीन रुपये



मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

'मण्डल' से निबधों के संग्रह कई प्रकाशित हुए हैं। इनमे से कुछ का साहित्यिक महत्त्व है, कुछ का नैतिक या आध्यात्मिक। प्रस्तुत निबंध-संग्रह दूसरी कोटि का है। जैसा कि पाठक निबधों के शीर्षकों से देखेंगे, सारे निबधो के पीछे एक आध्यात्मिक प्रेरणा है। लेकिन इससे यह न समझा जाय कि लेखक ने अपनी रचनाओं मे ऐसी बाते कही हैं, जिनका सबध मानव-जीवन की दैनिक समस्याओं से नही है। लेखक ने आज के ज्वलत प्रश्नो पर प्रकाश डाला है और अत मे बताया है कि जीवन के शुद्ध और प्रबुद्ध होने पर सारे सवाल स्वतः ही हल हो जायगे।

लेखक की कई पुस्तके मण्डल से प्रकाशित हुई है। उनके लघु निबंधो का सग्रह, 'इतनी परेशानी क्यो' हिन्दी-जगत् मे खूब लोकप्रिय हुआ है।

हमे आशा है कि इस पुस्तक को सभी वर्गो के पाठक पढेंगे और इसके विचारो से प्रेरणा ग्रहण करेंगे।

—मंत्री

दो शब्द

कुछ वर्ष पहले जब मैं नेपाल मे भारतीय राजदूत था तब इनमें से कुछ निबन्धो को लिखा था और कोशिश की थी कि संस्कृत के कुछ प्रचलित वाक्यांशों व कुछ भजनों के शीर्षको को चुनकर गम्भीर विषयों पर सरल व सुबोध भाषा में अपने विचार प्रकट करूं। 'सत्यमेव जयते', 'योग कर्मसु कौशलम्', 'धर्म चर', 'निर्बल के बल राम', 'साहिब मिलै सबूरी में' आदि निबन्ध नेपाल में लिखे गए थे और उन्हे समय-समय पर 'गांधी-मार्ग' मे प्रकाशित किया था। इनमें से कुछ निबंध 'भूदान-यज्ञ'मे भी छपे थे। बाद में गुजरात आने पर कुछ और निबन्ध लिखने का अवसर मिला। उन्हे भी इस संग्रह में शामिल कर दिया गया है।

हमारे देश के नवयुवक अपनी प्राचीन परम्परा से लगभग अपरिचित ही हैं। उन्हे न तो शिक्षण-संस्थाओं में भारत की प्राचीन संस्कृति के बारे मे कुछ सीखने का अवसर मिलता है और न घरों मे ही। इसलिए यह आवश्यक है कि उन्हें सरल शैली में हमारी नैतिक व आध्यात्मिक परम्परा का कुछ ज्ञान देने का प्रयत्न हो। इसी दृष्टि से मैंने इन निबन्धो को लिखने का प्रयास किया है। निबन्धों का विषय केवल आध्यात्मिक ही नहीं है, उनमे सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक विषयों का भी समावेश

है। किन्तु बुनियादी दृष्टि आध्यात्मिक है जो भारतीय संस्कृति का आधार रही है।

मैं आशा करता हू कि हमारे नवयुवक इन निबन्धो को पसन्द करेंगे और उन्हे पढने से उनके जीवन में प्राचीन भारतीय सस्कारो की कुछ झलक मिल सकेगी।

—श्रीमन्नारायण

राजभवन,
अहमदाबाद
३० अक्तूबर, १९६८

विषय-सूची

सत्यमेव जयते

'सत्यमेव जयते'

हमारे राष्ट्र-चिन्ह में अशोक-स्तभ के नीचे 'सत्यमेव जयते' लिखा गया है। यह वाक्याश मुडकोपनिषद् से उद्धृत किया गया है। 'सत्य की ही जय होती है' इतना कहने से ही हमारे ऋषियो को सतोष नही हुआ। उन्होंने यह भी जोड दिया—'नानृतम्', अर्थात् 'झूठ की नही।' सत्य के सिद्धान्त में हमारे ऋषियो की कितनी गहरी श्रद्धा थी, कितना आग्रह था, किन्तु हम 'सत्यमेव जयते' चिन्ह को दिन-प्रतिदिन देखते हुए शायद इतने आदी हो गये हैं कि उसके अर्थ की ओर विशेष ध्यान नही देते। सन् १९४७ में हमारे तत्कालीन उप-राष्ट्रपति डॉ० राधा-कृष्णन् व राष्ट्रनेता पडित जवाहरलालजी ने स्वतन्त्र भारत के सामने इसे 'राष्ट्र-मन्त्र' के रूप में रखा था। इसलिए इसके गूढ अर्थ को ठीक तौर से समझना और उसपर अमल करना हमारा पवित्र कर्तव्य बन जाता है।

कुछ वर्ष पूर्व जब भारत का पाकिस्तान से सघर्ष छिडा तब हमारे स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने बड़ी हिम्मत व समझदारी से उस कठिन परिस्थिति का मुकाबला किया। किन्तु उन्होने आवेश में आकर कभी सत्य को नही छोडा, झूठी दलीलो में नही पड़े और देश व दुनिया को धोखा देने की

कोशिश नही की। उन दिनों मुझे तुलसी रामायण में 'धर्म-रथ' वर्णन का स्मरण हो आया। रावण की वलवान व सुसज्जित सेना को देखकर विभीषण के मन मे भय व शंका उत्पन्न हो गई थी। राम की तो वानर सेना ही थी, और स्वयं भगवान के पैरो में जूते तक न थे। रामचन्द्रजी ने विभीपण की परेशानी दूर करने के लिए उस 'रथ' का वर्णन किया, जिसके द्वारा वह रावण की आसुरी सेना को पराजित करने के लिए दृढ संकल्प थे :

सौरज, धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे॥

मैने उन दिनों यह चौपाई शास्त्रीजी व चौहानसाहव को याद दिलाने के लिए लिखकर उनके पास भेज दी थी। इससे उन्हे सन्तोप हुआ और सत्य-निष्ठा में शायद कुछ वल भी मिला होगा। अन्त में, भारत की ही विजय हुई और दुनिया को असलियत का अन्दाज मिला।

× × ×

गाधीजी ने तो अपनी आत्मकथा का नाम 'सत्य के प्रयोग' रखा था। उनका सारा जीवन ही सत्य की खोज था। राजनीति व स्वराज्य-प्राप्ति तो केवल एक साधना थी। उनका पक्का विश्वास था कि शुद्ध साधनो द्वारा ही पवित्र साध्य की प्राप्ति हो सकती है, अशुद्ध व्यवहार से नही। जैसा बीज होगा, वैसा ही वृक्ष उपजेगा। सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन में जब चौरी-चौरा का हत्याकाण्ड हुआ तो गांधीजी ने अपना

स्वातन्त्र्य-सग्राम ही अचानक रोक दिया। उस समय तो देश के सभी नेताओ को बड़ा आश्चर्य व असन्तोष हुआ, किन्तु बाद में उन्होने बापूजी की दूरदर्शिता व सत्य-परायणता को समझा और उन्हीके सत्य व अहिसा के मार्ग पर दृढता से चलने का सकल्प किया।

गांधीजी सन् १९४४-४५ मे कई महीनों तक डायरी में अपने हाथ से रोज एक विचार लिखा करते थे। बाद में वे 'बापू के आशीर्वाद' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए। इस पुस्तक का अभी तक अग्रेजी व अन्य भाषाओं में अनुवाद न होने से उसकी जानकारी जनता में बहुत कम है। मैं तो इस पुस्तक को गाधीजी के जीवन व विचारों का निचोड़ समझता हूं। इसमे 'सत्य' के सम्बन्ध मे बापूजी ने दो विचार लिखे है :

"सच्चा कार्य कभी निकम्मा नही होता।"

"सच्चा वचन अन्त में कभी अप्रिय नही होता।"

इन वाक्यो पर जितना भी मनन किया जाय उतना थोडा है। उनमे गाधीजी की जीवन-साधना का स्पष्ट दर्शन मिल जाता है।

× × ×

लेकिन आखिर सत्य है क्या ? क्या केवल झूठ न बोलना ही सत्य है ? जब पायलेट न्यायाधीश ईसा मसीह का मुकद्दमा सुन रहा था तब ईसा ने भी सत्य की दुहाई दी थी। पायलेट ने मुस्कराकर पूछा, "सत्य क्या है ?" और फिर प्रश्न का उत्तर सुने बिना वह ईसा का मजाक करता रहा। किन्तु यह सनातन प्रश्न आज भी हमारे सामने तीव्रता से खड़ा है। उसका सन्तोष-

जनक उत्तर देना आसान नही है। हम सत्य की व्याख्या भी सुविधा के अनुसार करना चाहते है। हमारा जोर साध्य पर ही रहता है, साधन की शुद्धि व पवित्रता पर नही।

यदि आप सेवाग्राम की 'बापू-कुटीर' मे प्रवेश करे तो दीवार पर अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक रस्किन का यह वाक्य एक पुट्ठे पर लिखा हुआ आज भी मिलेगा। अपने जीवन-काल में गाधीजी ने उसे स्वय सामने टंगवाया था :

> "The essence of lying is in deception, not in words. A lie may be told by silence, by equivocation, by the accent on a syllable, by a glance of the eye attaching a peculiar significance to a sentence, and all these kinds of lies are worse and baser by many degrees than a lie plainly worded,"

अर्थात्, असत्य बोलने का मर्म धोखा देने में है, न कि शब्दों में। असत्य बोला जा सकता है, मौन से, कूट-भाव से, किसी एक शब्दांश पर जोर देने से, एक वाक्य को विशेष अर्थ प्राप्त हो जाय ऐसे आख के इशारे से। और ये सभी तरह के असत्य सीधे शब्दो मे कहे गये असत्य से कई गुना अधिक बुरे व हीन है।

इसी मार्मिक विचार को 'महाभारत' के कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है :

नाऽसौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति,
न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्।

अर्थात्, जिसमें सत्य नही होता, वह धर्म नहीं और जिसमें

छल होता है वह सत्य नही है।

इस प्रकार हमें यह साफ तौर पर समझ लेना चाहिए कि सत्य की आत्मा निष्कपट व्यवहार में ही प्रतिबिम्बित हो सकती है। जहा छल है, शब्दों में दुहरा अर्थ है, कूटनीति है, वहा सत्य के दर्शन नही मिल सकते है। और जहा सत्य नही है, वहा अन्त में पराजय निश्चित है, भले ही शुरू में सफलता के कुछ आसार नजर आवे।

× × ×

वर्तमान युग में 'डिप्लोमेसी' (कूटनीति) का बोलबाला है। सभी राष्ट्र अपने राजदूतो द्वारा दूसरे देशो को धोखा देकर अपना-अपना स्वार्थ साधने की कोशिश करते है। किन्तु मुझे तो स्पष्ट दीख रहा है कि अब इस प्रकार की कूटनीति दुनिया मे नही चल सकेगी। धोखा-धडी व बेईमानी के व्यवहार द्वारा हम राष्ट्रों को छल नही सकते। एशिया व अफ्रीका के अर्ध-विकसित व छोटे देश भी काफी चौकन्ने होगये है और बडे व विकसित राष्ट्रो की बातों में अब आनेवाले नही है। सच्ची 'डिप्लोमेसी' ईमानदारी, सद्भावना व सचाई द्वारा ही सचालित की जा सकती है।

भारतीय राजदूत की हैसियत से जब मै पहली बार नेपाल के महाराजाधिराज महेन्द्र वीर विक्रम शाह देव से मिला तो मैने कहा

"महाराजाधिराज! मै तो 'डिप्लोमेट' नही हू। गाधीजी से मैने यही सीखा है कि हमारी बाते साफ व सच हो।"

महाराजाधिराज ने फौरन मुस्कराकर उत्तर दिया :

"महामहीम, मुझे भी 'डिप्लोमेसी' बिल्कुल पसन्द नहीं है। मैं तो सीधा, सरल व्यवहार ही चाहता हू। इसलिए मैं आपकी बात का स्वागत करता हूं।"

नेपाल और भारत के बीच सद्भावना बढाने में मुझे जो कुछ सफलता मिली, वह सचाई व ईमानदारी के व्यवहार से ही प्राप्त हो सकी। अगर मैं कहू कुछ और करूं कुछ तो मेरी कौन सुनेगा? इस प्रकार की कूटनीति महज बेवकूफी सिद्ध होगी। गरीब व विकासशील देशों को आर्थिक सहायता देते समय भी हमें अपना दृष्टिकोण व्यापक रखना होगा। अगर हम मदद देकर उन राष्ट्रों की स्वतन्त्रता व स्वाभिमान को सीमित करना चाहेंगे तो इसका प्रभाव बिल्कुल उल्टा ही होगा और सद्भावना व सहकार्य के बजाय हमे कटुता व अविश्वास के वातावरण का सामना करना पडेगा। हो सकता है कि इस तरह की 'डिप्लोमेसी' को आजकल कुछ लोग भोलापन समझ लें और उसकी निन्दा भी करे। शायद हमारे सीधे व सरल व्यवहार से किसी समय कुछ तात्कालिक नुकसान भी उठाना पडे। किन्तु मुझे तो इसमें जरा भी शक नहीं है कि अन्त में सत्य की ही विजय होगी, झूठ, कूटनीति व चालबाजी की नही।

× × ×

सत्य क्या है और असत्य क्या है, इसका अन्दाज किस प्रकार लगाया जाय? इस प्रश्न का उत्तर गांधीजी ने बडे मार्मिक शब्दों में दिया है। सन् १९२२ में वह यरवदा-जेल में राजनैतिक बन्दी थे। वहा से उन्होंने अपने 'पांचवें पुत्र' सेठ जमनालाल बजाज

को एक बडे महत्व का पत्र लिखा था, जिसमे सत्य व अहिंसा के बुनियादी सिद्धान्तो का बहुत सुन्दर विवेचन है। सत्य की व्याख्या करते हुए उन्होने लिखा—"हमारे अन्तःकरण को जब जो ठीक लगे वही सत्य है।" दूसरे शब्दों मे अगर हमारा दिल साफ हो और हम अपने हृदय की गवाही के अनुसार ही विभिन्न परिस्थितियों में कार्य करें तो हमें सत्य का आशीर्वाद प्राप्त हो सकता है। किन्तु अगर हमने अपने-आपको धोखा देने की कोशिश की और अपने अन्तर की आवाज को सुना-अनसुना कर दिया तो हम सत्य का हनन करते हुए अपनी आत्मा की भी निर्मम हत्या कर बैठेगे।

मेरे पिताजी अकसर कहा करते थे कि दुनिया मे सबसे आसान काम है अपने-आपको धोखा देना। हम दिन-रात कोशिश करते है कि कही दूसरों के धोखे मे न फँस जायं। लेकिन यह नही समझते कि हम खुद ही अपनेको दिन में शायद कई बार धोखा देते रहते है। अकसर हमारा दिल तो कहता है कि अमुक काम बुरा है और उसे नही करना चाहिए, लेकिन फिर भी हम अपने मन को कई व्यावहारिक दलीले देकर समझा लेते है कि वैसा करने में कोई खास हर्ज नही है। दुनियादारी, लोभ, मोह व लालसा हमारी बुद्धि पर पर्दा डाल देते है और हमारे हृदय को छलकर असत्य व्यवहार करा डालते है। बस, यही है सारे पाप की जड और झूठ की बुनियाद।

जब मैं १९४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन के अन्तर्गत बुलढाना जेल में राजबन्दी था तब चहारदीवारी के नज़दीक चारो ओर घूमते हुए काफी दोहे लिख डाले थे, जो बाद में 'अमर

आशा' के नाम से प्रकाशित हुए थे। उनमें से एक दोहा इस प्रकार था :

दगा न दो अपने दिल को,
बस यही नीति का सार।
अपने को धोखा देने में,
नही पाप का पार।

× × ×

यदि हम जरा वारीकी से सोचे तो पता चलेगा कि सत्य से विचलित होने का मुख्य कारण है मोह या आसक्ति। भारत की प्राचीन परम्परा में राजा हरिश्चन्द्र की कथा वहुत मशहूर है। वे सत्य के अटल पुजारी माने जाते है। किन्तु प्रारम्भ मे उनको भी मोह ने असत्य की ओर वुरी तरह घसीटा था। सारा वैभव होते हुए उनके कोई पुत्र न था। कठिन तपस्या के पश्चात् वरुण देवता ने उन्हें पुत्र-दान का वचन दिया, लेकिन कहा कि लड़का पैदा होते ही वापस ले लूगा। कुछ समय वाद एक सुन्दर वालक का जन्म हुआ, जिसका नाम रोहित रखा गया। राजा हरिश्चन्द्र की अनुनय-विनय से प्रभावित होकर वरुणदेव ने उसे दस दिन तक ज़िन्दा रहने दिया, लेकिन राजा का मोह वढ़ता ही गया। उन्होने प्रार्थना की कि वच्चे के दात निकलने तक उसे जीवित रहने दिया जाय। यह माग भी स्वीकृत होगई। अन्त में राजा हरिश्चन्द्र रोहित को जिन्दा रखने के लिए एक ब्राह्मण के निरपराध वालक की वलि चढाने को भी तैयार होगये। जव विश्वामित्र ने यह करुण दृश्य देखा तो उन्हे वडा क्रोध आया और राजा को कडे शब्दों में धिक्कारा। हरिश्चन्द्र के अन्तर-नेत्र खुले

और उन्होंने उसी दिन से सत्य का व्रत ले लिया। बाद की कहानी सर्व-विदित ही है।

आज हमारे समाज में व देश मे जो असत्य और भ्रष्टाचार छाया हुआ है उसकी बुनियादी वजह तो लोभ एव लिप्सा ही है न ? सयोजन के इस युग में हरेक व्यक्ति अपना जीवन-स्तर उठाने की धुन में लगा हुआ है। अधिक धन कमाना ही जिन्दगी का माप-दण्ड बन गया है। आर्थिक लाभ के लिए सभी जरिये अपनाने में किसीको तनिक भी सकोच व झिझक नही होती। ऐसी अवस्था में बेचारा सत्य मुह छिपाकर एक ओर न बैठ जाय तो क्या करे ?

दशरथनन्दन राम को हम मर्यादा-पुरुषोत्तम के रूप में पूजते है, क्योकि उन्होने मोह को पूरी तौर से जीत लिया था और पिता का इशारा पाते ही राज-तिजक की जगह चौदह वर्ष का बन-वास सहर्ष स्वीकार किया। आज का जमाना होता तो ऐसी परिस्थिति मे बलवा हो जाता और राजा दशरथ शायद कारा-वास में डाल दिये जाते। लेकिन उस समय तो प्रतिज्ञा को तोड़ना मृत्यु से भी बढकर माना जाता था :

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाहिं पर बचन न जाई॥

इस आदर्श का तभी पालन किया जा सकता है जब हम अपने सच्चे स्वरूप को समझकर मोह व लोभ के जाल से छूट जाय।

× × ×

अकसर कहा जाता है कि हमें 'कटु सत्य' कहने मे झिझकना

नहीं चाहिए। मुझे एक बुजुर्ग का ध्यान आता है, जो बड़े कर्मठ समाज-सेवक थे, किन्तु जिनसे सभी लोग घबडाते थे। उन्होंने अपने व्यक्तिगत व सार्वजनिक जीवन में शायद ही कभी असत्य का व्यवहार किया होगा। लेकिन उनका बोलने का तरीका बडा कठोर व अप्रिय था। इसीलिए उनकी सत्य-परायणता का प्रभाव जनता पर कुछ उल्टा ही पडता था। सभी कार्यकर्ता उनका आदर तो करते थे, लेकिन उनसे ज़रा दूर ही रहने का प्रयत्न करते थे।

यह ज़रूरी नहीं है कि सत्य कटु ही हो। सत्य में मिठास भी होनी चाहिए। मनुस्मृति का यह श्लोक कितना सुन्दर व मार्मिक है :

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्,
न ब्रूयात् सत्यं अप्रियम्।

अर्थात्, सत्य बोलो, पर प्रिय बोलो। सत्य होते हुए भी सुननेवाले को अप्रिय लगे, ऐसा न बोलो।

काश! हमारे बुजुर्ग समाज-सेवक मनु महाराज के इस आदर्श को अच्छी तरह समझ लेते। तब तो सचमुच सोने में सुगन्ध का सुखद अनुभव मिल जाता।

: २ :

'निर्बल के बल राम'

शायद सन् १९३७ की बात है। उन दिनो मध्य प्रदेश व बरार के काग्रेस मुख्य मन्त्री डा० खरे थे। उन्होने काग्रेस हाई कमान से पूछे बिना ब्रिटिश गवर्नर की सलाह से अपने मत्रि-मडल में परिवर्तन कर लिया। इस कार्रवाई से काग्रेस के नेता बहुत नाराज हुए और सरदार पटेल ने, जो काग्रेस पार्लामेन्टरी बोर्ड के अध्यक्ष थे, डा० खरे को आदेश दिया कि वह मुख्य मत्री पद से फौरन त्यागपत्र दे दे। नये मुख्यमत्री का चुनाव करने के लिए प्रदेश की काग्रेस विधान-सभा पार्टी के सदस्यो की एक आवश्यक मीटिग वर्धा के नव-भारत विद्यालय हॉल में रखी गई। उन दिनो मै ही इस विद्यालय का आचार्य था। इसलिए मीटिग का प्रबन्ध करने में हमे काफी जिम्मेदारी उठानी पडी।

गाधीजी ने सरदारसाहब को सुझाव दिया कि डा० खरे की जगह खादी ग्रामोद्योग सघ के अध्यक्ष और वयोवृद्ध, अनुभवी तथा रचनात्मक कार्यकर्ता श्री श्रीकृष्णदासजी जाजू को मध्य प्रदेश का नया मुख्यमंत्री चुना जाय। सरदार पटेल ने यह सुझाव फौरन स्वीकार कर लिया। गाधीजी ने श्री जाजू को सेवाग्राम आश्रम बुलाकर उनके सामने यह प्रस्ताव रखा। किन्तु जाजूजी ने अपनी असमर्थता प्रकट की : "बापूजी, मै तो

कांग्रेस पार्टी का सदस्य भी नही हूं।"

"उसमें कोई दिक्कत नही होगी। आप छ. महीने के अन्दर कही से भी चुन लिये जायगे।" गाधीजी ने समझाया।

"लेकिन मुझे तो शासन चलाने का बिल्कुल अनुभव नही है। बापू, मुझे राजनीति में मत डालिये!"

गाधीजी ने फिर आग्रहपूर्वक कहा, "जाजूजी, हमें अब ऐसा मुख्यमत्री चाहिए, जिसमें कांग्रेस व जनता का विश्वास हो। आपको तो कागेस एकमत से चुनने को तैयार है। फिर चिन्ता क्यों?"

लेकिन जाजूजी की हिम्मत नही हुई। वह बोले, "बापूजी, मुझे इस दलदल में न डालिये। इस जिम्मेदारी को उठाने की मेरी शक्ति नही है।"

गाधीजी ने गभीरता से कहा, "आपको हिम्मत नही हारनी चाहिए, जाजूजी! भगवान् का नाम लेकर इस काम को उठा लीजिये। 'निर्बल के बल राम'।"

जाजूजी गद्गद् हो गये! वह कुछ उत्तर न दे सके! उन्होंने फिर सोचने के लिए कुछ समय मांगा। अन्त में वह राजी न हुए, किन्तु उस समय के बापू के शब्द 'निर्बल के बल राम' आज भी मेरे कानों में गूज रहे है। इस दैवी मत्र मे बापू की सचमुच अडिग श्रद्धा थी।

× × ×

एक दूसरी घटना का भी स्मरण हो आया है। अप्रैल सन् १९५१ में पूज्य विनोबाजी ने निश्चय किया कि वह पैदल ही यात्रा करेंगे, मोटर या रेल का उपयोग नही करेंगे। उन्ही दिनों

उनके पास हैदराबाद के नजदीक शिवरामपल्ली में आयोजित अखिल भारत सर्वोदय सम्मेलन में शामिल होने के लिए आग्रह-भरा निमत्रण आया। तेलगाना में उस समय कम्यूनिस्टो का बडा आतक छाया हुआ था। इसलिए विनोबाजी को हैदराबाद की ओर जाने की प्रेरणा हुई। किन्तु उनके मन मे संकोच भी था। कम्यूनिस्टों का मुकाबला अहिसा द्वारा सगठित करना आसान काम नही था और भूदान-योजना की उन दिनो कोई कल्पना ही न थी। फिर भी आचार्य विनोबाजी ने भगवान् का स्मरण किया और दूसरे दिन सेवाग्राम-आश्रम से पैदल ही शिवराम-पल्ली की ओर चल देने का कार्यक्रम बना लिया। प्रस्थान के समय आश्रम की व हिन्दुस्तानी तालीमी सघ की सब बहने एकत्र हो गई। आशादेवीजी ने विनोबाजी से पूछा, "बाबा, ये सब बहने पूछ रही है कि इस समय कौन-सा भजन गावे ?"

विनोबाजी के नेत्रो में आसू झलक रहे थे। वह धीरे-से बोले, "सुनेरी मैने निर्बल के बल राम।"

और फिर सूरदास का यही भजन बहनो ने बडे भावपूर्ण वातावरण में गाया। भजन सुनते-सुनते ही विनोबाजी की ऐतिहासिक पद्-यात्रा प्रारम्भ हो गई। इसी यात्रा के फल-स्वरूप देश मे भूदान-गगा का आविर्भाव व प्रवाह हुआ और तेलगाना मे कम्यूनिस्टो की हिसात्मक प्रवृत्तिया एक प्रेम के आन्दोलन से पराजित हुई।

× × ×

पडित जवाहरलाल नेहरू के देहावसान के बाद देश मे गहरी चिन्ता का वातावरण छा गया था। किन्तु कुछ दिन बाद

ही कांग्रेस पार्टी ने श्री लालबहादुर शास्त्री को एकमत से अपना नया नेता चुन लिया। शास्त्रीजी का स्वास्थ्य उतना अच्छा नही था। उन्हे भारत के प्रधान मंत्री पद का संचालन करना पड़ेगा, ऐसा कभी ख्याल भी न था। चुनाव के वाद मैं भी उन्हे वधाई देने गया, "शास्त्रीजी, आपके ऊपर यकायक बड़ी जिम्मेदारी आ गई है।"

"हा, वहुत वडा वोझ आ पडा है। किन्तु उसे उठाने की शक्ति भी भगवान् ही देगा! 'निर्वल के वल राम।'" शास्त्रीजी ने नम्रता से मेरी ओर देखते हुए कहा।

प्रधान मत्री वनते ही एक सप्ताह के भीतर वह विनोबाजी के आशीर्वाद लेने वर्धा गये और राम का नाम लेकर अपनें नये काम में जुट गये। थोडे ही समय में शास्त्रीजी जिस प्रकार सारे देश की जनता का विश्वास सम्पादन कर सके, वह एक अपूर्व घटना ही समझनी चाहिए।

कुछ महीने वाद शास्त्रीजी ने एक दिन मुझे अचानक वुलाया और वोले, "श्रीमनजी, मैं आपको नेपाल भेजना चाहता हू। आप चौंके नही। हम नेपाल जैसे पड़ोसियों से अब वहुत गहरे सम्वन्ध स्थापित करना चाहते है।"

"मुझे आप वहा किस काम के लिए भेजना चाहते है?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"भारत के राजदूत की हैसियत से! यह विचार मेरे दिमाग में अचानक कल ही आया, और अव निकल ही नही रहा है।"

"लेकिन, शास्त्रीजी मुझे तो उस प्रकार के काम का अनु-

कुल अनुभव नही है।"

"क्या मुझे प्रधान मंत्री के काम का तजुर्बा था ! राम का नाम लेकर काम चला रहा हू, वैसे ही आप भी चला लेगे।"

शास्त्रीजी की श्रद्धापूर्ण दलील का मेरे पास कोई उत्तर न था। भक्त सूरदास का वह भजन स्मरण हो आया—"जैसे राखहु वैसे हि रहौ।"

× × ×

'निर्बल के बल राम' का यह अर्थ नही हो सकता कि हम हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाय और अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए आवश्यक पुरुषार्थ न करे। सूरदासजी ने अपने भजन में भी कहा है कि गज ने ग्राह से अपने प्राण बचाने के लिए पूरे बल का प्रयोग किया। हताश होकर ही उसने भगवान् की सहायता के लिए पुकार की। उसी प्रकार द्रौपदी ने दु शासन के अत्याचार से बचने की भरसक कोशिश की। अन्त मे असहाय अवस्था में उसने श्रीकृष्ण से रक्षा की प्रार्थना की। भजन की आखिरी पक्ति में कहा गया है .

सूर किशोर कृपा से सब बल हारे को हरिनाम।

मै तो इसका अर्थ यही समझता हू कि मानव को अपनी सारी शक्ति लगाकर लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करना चाहिए, लेकिन यह भी समझना चाहिए कि पुरुषार्थ करना हमारा कर्तव्य है, किन्तु कर्मों का फल हमारे हाथ में नही है। उसे तो परमेश्वर की इच्छा व अनुग्रह पर ही छोड़ देना पड़ता है। गीता मे भगवान् ने स्पष्ट शब्दों में कहा है :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

× × ×

जब हम अपनी पूरी कोशिश करने के बाद थक जाते है, तो 'राम' का नाम लेते हैं। यह सिर्फ एक धार्मिक व भावात्मक प्रक्रिया नही है। इसमें आधुनिक मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण सिद्धान्त भी छिपा हुआ है। आजकल सभी वैज्ञानिक स्वीकार करते है कि विचारशक्ति में बड़ी ताकत होती है। वह शक्ति अणुशक्ति से भी बहुत सूक्ष्म है, और विज्ञान के अनुसार जितनी सूक्ष्मता बढती जाती है उतनी ही शक्ति की भी वृद्धि होती जाती है। होमियोपैथी की यही खासियत है। जितनी सूक्ष्म यानी 'हाई पोटैन्सी' की दवा होगी उतना ही गहरा उसका शरीर पर असर होगा। इस तरह 'राम नाम' की शक्ति तन-मन-धन की शक्तियो से कही ज्यादा होना स्वाभाविक है। मेरे पिताजी की सूक्ष्म विचारो की शक्ति में बहुत श्रद्धा थी। वह कहा करते थे कि धार्मिक मन्त्रों का एक-एक शब्द 'एटम बम्ब' की तरह होता है। उसका ठीक तौर पर गम्भीर विचार के साथ उच्चारण किया जाय तो वह 'तारक' बन सकता है। लेकिन हम असाव-धानी व विचारहीनता से मंत्रों का उच्चारण करें, तो उनके शब्द 'मारक' भी हो सकते है।

'राम' शब्द 'रम' से बना है। जब हम यह अनुभव करने लगते है कि एक ही ब्रह्म सारे विश्व में रमा है तो हम 'राम' की अखण्ड व अनन्त शक्ति को जाग्रत कर देते है। अथवा यों कहें कि 'आत्म-ज्ञान' ही सूरदास के भजन का 'हरिनाम' है। हम अहंकारवश होकर बहुत समय तक अपने स्थूल बल का प्रयोग करते रहते है। किन्तु आत्म-ज्ञान द्वारा हम श्रद्धापूर्वक अपने

ईश्वरीय रूप को पहचान लेते है, तब हमारे अन्दर एक प्रचण्ड आध्यात्मिक शक्ति का आविर्भाव हो जाता है जो भौतिक शक्तियो से लाखो, करोड़ों गुना अधिक ताकतवर है। यही शक्ति 'राम', 'रहीम', 'खुदा' 'अहूर मज्द' या 'सत्नाम' शब्दों से पुकारी जाती है। इस शक्ति को जगाने के लिए नम्रता चाहिए, अहंकार-शून्यता चाहिए।

मेरा विश्वास है कि 'निर्बल के बल राम' कवि की कोरी कल्पना नही है। वह एक मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक सनातन सत्य है। मनु महाराज नें कहा है .

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।

: ३ :

'काहू सों कछु न चहौंगो'

तुलसीदास की 'विनय-पत्रिका' सचमुच एक अद्भुत ग्रंथ है। उसमें आध्यात्मिक प्यास वुझाने के लिए अमृत की बूंदें लवालव भरी है। मेरे पूज्य पिताजी तो उर्दू व फारसी के विद्वान् थे, किन्तु वकालत से अवकाश-ग्रहण करने के वाद उन्होने तुलसीकृत रामायण व 'विनय-पत्रिका' का वहुत गहरा अध्ययन किया। आचार्य विनोवाजी भी इस ग्रन्थ के अनन्य भक्त है। उन्होने हाल ही में 'विनयाजलि' नाम से 'विनय-पत्रिका' का एक सक्षिप्त सस्करण 'सर्व सेवा सघ' द्वारा प्रकाशित किया है, ताकि इस अमृत-वाणी का अधिक व्यापक प्रचार हो सके।

आज अपने देश में चारों ओर सघर्ष, द्वेष व कलह का वातावरण फैला हुआ है। यह वुरा हाल राजनैतिक क्षेत्र में हो, यह तो समझ में आ भी जाता है। लेकिन अफसोस तो यह है कि इन दिनो आध्यात्मिक व धार्मिक क्षेत्रों मे भी इसी प्रकार का द्वेषमय वातावरण नजर आ रहा है। कुछ वर्ष पहले जब मैं ऋषिकेश गया तो यह जानकर वहुत ही दु:ख हुआ कि वहां भी 'गीता-भवन' व 'परमार्थ-निकेतन' के संचालकों में यह होड़ लगी हुई थी कि किसकी संस्था में अधिक कमरों की संख्या हो

जाय। इस स्थूल होड के कारण एक जमीन के टुकड़े को दोनों संस्थाएं खरीदना चाहती थी, ताकि उसपर कुछ और कमरे बनाये जा सके। मुकदमेबाजी की भी नौबत आ गई थी। अन्त में श्री गुलजारीलाल नन्दाजी ने वह जमीन भारत साधू-समाज को दिलवा दी और इस झगडे को खत्म कराया।

× × ×

वर्तमान दूषित वातावरण को किस प्रकार दूर किया जाय? केवल दूसरो को उपदेश देकर यह माहौल सुधारा नही जा सकता और न दण्ड देकर ही जनता में नैतिक शक्ति का विकास किया जा सकता है। इस तरह की बुराई तो केवल आध्यात्मिक साधना के जरिए काबू में लाई जा सकती है। मेरे ख्याल से सन्त-कवि तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' की इन दो पक्तियो मे इस अध्यात्म का निचोड़ उँडेल दिया है :

जथा लाभ संतोष सदा,
काहूं सों कछु न चहौंगो।

क्योकि यह स्पष्ट है कि तृष्णा ही सब बुराइयो व दु.खो की जड है।

× × ×

महाभारत में यक्ष-युधिष्ठिर-सम्वाद बहुत ही मार्मिक प्रश्नोत्तरी है। निर्जन वन में विषैले तालाब का पानी पीकर चारों पाडव-बन्धु मृत जैसे जमीन पर पड़े थे। युधिष्ठिर ने भी प्यास से पीड़ित होकर उस तालाब के पानी को पीना चाहा, किन्तु यक्ष ने उन्हें सावधान किया कि यदि वह भी उसके कुछ प्रश्नो का उत्तर दिये बिना पानी पीने की कोशिश करेंगे तो उनका भी

अन्य भाइयों जैसा हाल होगा। युधिष्ठिर ने बात मान ली और यक्ष ने प्रश्न पूछना शुरू किया। धर्मराज सभी प्रश्नों के सही उत्तर देते गए। मेरी दृष्टि से उन प्रश्नों में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न था—"राजन्, ससार में सबसे बड़े आश्चर्य की बात क्या है?" और युधिष्ठिर का उत्तर भी संपूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान का सार था—"हर रोज़ आखों के सामने कितने ही प्राणियों को मृत्यु के मुह में जाते देखकर भी मनुष्य इस प्रकार स्वार्थपूर्ण व्यवहार करता है, मानों वह अमर रहनेवाला है!"

× × ×

इसका यह अर्थ नही है कि हम लंगोटी लगाकर वन में चले जाय और संसार से मुह मोड़ लें। 'तेन त्यक्तेन भुजीथा' का आदर्श उपनिषदो ने हमारे सामने हजारों वर्ष पहले रखा था। गीता मे भी भगवान् द्वारा 'मा फलेषु कदाचन' की दीक्षा दी गई है। महाराजा जनक का निस्पृह जीवन जगत-विख्यात है। वह अपने महान् राज्य का भोग करते हुए भी कमल के पत्ते के समान अलिप्त थे, अनासक्त थे।

इसी सिलसिले में हमारे पिता स्वर्गीय धर्मनारायणजी एक सूफी नवाब की कहानी अक्सर सुनाते थे। एक दिन एक दरवेश उनसे मिलने आया और देखा कि नवावसाहब तो एक सुन्दर खीमे में मखमल की गद्दी पर बैठे है और खीमे की जमीन में गढ़ी कीले सोने की हैं। वह बोला, "नवाबसाहब! हमने तो आप-की रुहानियत की बड़ी तारीफ सुनी थी। आप तो एक बड़े सूफी माने जाते हैं, लेकिन आपके ये शाही ठाठ देखकर मुझे बहुत अफसोस हुआ है।" नवाबसाहब ने मुस्कराकर उत्तर दिया,

"मै आपके साथ अभी सब चीजे छोड़कर चलने को तैयार हूं।" और वह गद्दी से उठकर फौरन दरवेश के साथ चल दिये। जूते भी नही पहने। थोड़ी देर बाद दरवेश परेशान होकर बोला, "अरे! मै अपना कटोरा तो आपके खीमे मे ही छोड आया।" नवाबसाहब ने हसकर कहा, "दरवेश साहब, आपके कटोरे ने अभी तक आपका पीछा नही छोड़ा? मेरे खीमे की सोने की कीले मेरे सीने में नही, सिर्फ जमीन में गढी थी।"

× × ×

'निष्काम कर्म' का आदर्श तो हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में ओत-प्रोत है। महात्मा गांधी ने गीता को 'अनासक्ति योग' के नाम से ही पुकारा है। स्थितप्रज्ञ-लक्षणों में 'प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्' की भावना को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। सत कबीर तो साधुओं को भी पुकार-पुकारकर यही कहते थे—'साहिब मिले सबूरी में।' जब महर्षि बाल्मीकि से भगवान् रामचन्द्र ने पूछा कि वे रात्रि के समय उनके आश्रम में किस जगह रहे, तो मुनिवर ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया :

जाहि न चाहिऊ कबहुं कछु,
तुम्ह सन सहज सनेह;
बसहु निरन्तर तासु मन,
सो राउर निज गेह।

कितना सुन्दर और मार्मिक दोहा है यह !

किन्तु सूफी साहित्य में तो इस आदर्श से भी एक कदम आगे बढने की कोशिश की गई है। श्रद्धेय पिताजी फारसी के एक सूफी कवि की यह पक्ति सुनाते थे :

तर्के दुनिया, तर्के उकबा,
तर्के मौला, तर्के तर्क।

अर्थात्, दुनिया का त्याग करो, स्वर्ग का त्याग करो, खुदा का भी त्याग करो। और इस भावना का त्याग करो कि तुमने कुछ त्यागा है।

× × ×

किन्तु इस प्रकार की अनासक्ति आत्म-ज्ञान के बिना नही हो सकती। जिसने अपने असली रूप को नही पहचाना है और यह अच्छी तरह नही समझ लिया है कि हम शरीर नही, आत्मा है, वह तुलसीदासजी के साथ "काहू सो कछु न चहौगो" गीत कभी गा ही नही सकता। "गुरु नानक बिनु आपा चीन्हे, मिटे न भ्रम की काई।" स्वामी रामतीर्थ ने भी इस सनातन ज्ञान को प्राप्त कर अपना जीवन कृतार्थ कर लिया था :

आत्म-ज्ञान से हुआ कृतार्थ जनम है,
पाना था सो पा लिया,
अब काम क्या बाकी रहा?

यह आत्म-ज्ञान हासिल करना आसान नही है। बड़ी जागरूकता व आध्यात्मिक लगन की आवश्यकता है। अहकार अत तक हमारा पीछा नही छोड़ता।

ग्रीस का महान् तत्ववेत्ता सुकरात भी आत्म-ज्ञान का ही उपदेश देता था। एक दिन एक दार्शनिक उसके पास आया, जिसके पास कपड़े फटे-पुराने थे और कोट में सैकड़ो छेद थे। वह बोला, "सुकरात, मैंने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया है और अहंकार को जीत लिया है।" सुकरात ने मुस्कराकर उत्तर दिया,

"मित्रवर! माफ करे, आपके कोट के छेदों में से तो मुझे अहं-कार की सैकड़ों किरणे नजर आ रही है।"

× × ×

मेरा तो अब यह दृढ विश्वास होता जा रहा है कि हमें अपने असली रूप का अनुभव भगवान् के अनुग्रह द्वारा ही हो सकता है और भौतिक जगत् में भगवान् का अनुग्रह सत्सग के जरिये प्राप्त होता है। महापुरुषो व सन्तों की संगति से ईश्वर के गुणों का आभास मिलता है और आत्म-ज्ञान की झलक दिख-लाई देती है। तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है:

बिनु सतसंग विवेक न होई;
राम कृपा विन सुलभ न सोई।

महाभारत में जब यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि कौन-सा ऐसा शास्त्र है, जिसका अध्ययन करके मनुष्य बुद्धिमान बनता है तो उन्होंने सारगर्भित उत्तर दिया, "कोई भी ऐसा शास्त्र नही। महान लोगो की सगति से ही मनुष्य वुद्धिमान वनता है।"

सत्सग प्राप्त करने के लिए हमें अति नम्र व विनयशील वनना होगा। भगवान् की अनुकम्पा अहम् भाव से दूर भागती है। वह तो उन भक्तो पर ही उतर सकती है, जो दिन-रात सेवा-कार्यो में लगे रहते हैं और स्वार्थ व अहकार की वृत्तियो से कोसों दूर रहते है।

× × ×

हमारा यह सद्भाग्य है कि भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने जनता के सामने सदा ऊचे आदर्श रखे, निष्काम कर्म के, त्याग व सेवा के। महात्मा गांधी को हम अपना राष्ट्र-पिता

कहते हैं। उन्होने जीवन-भर देश को आजाद करने में अपना तन-मन-धन समर्पित किया, किन्तु जिस दिन हमें राजनैतिक आजादी प्राप्त हुई उस दिन उन्होने उपवास किया और हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की आग को बुझाने के लिए गावों में पैदल-यात्रा की। उन्होंने स्वतन्त्र भारत के पदाधिकारियों से अपने लिए कुछ भी नही चाहा। केवल इतनी ही माग की कि स्वयं सादा जीवन बितावें और गरीब जनता की निरन्तर सेवा करते रहे।

और फिर हमारे राष्ट्रनेता जवाहरलाल नेहरू ने भी राष्ट्र-पिता के पद-चिह्नों पर चलने की कोशिश की, यद्यपि उनके विचार कुछ मामलो में गांधीजी से भिन्न थे। वह भी एक महान् कर्मयोगी थे, जिनकी प्रत्येक सांस देश-प्रेम से सुगन्धित थी और जिनका प्रति क्षण जनता को ऊंचा उठाने में लगा रहता था।

आदरणीय लालबहादुरजी शास्त्री ने भी दुनिया के सामने त्याग-भावना का एक नया आदर्श पेश किया। पंडित जवाहरलालजी ने जब 'कामराज योजना' के अन्तर्गत उनका इस्तीफा मंजूर कर लिया तो वह मन्त्री-पद से हटकर फिर कांग्रेस द्वारा जनसेवा के कार्य में लग गए। उन्होने एक दिन भाषण में कहा, "मन्त्रिमंडल से हटने के बाद मैं बड़े आनन्द में रहता हूं। मेरा वजन बढ गया है।" जवाहरलालजी के स्वर्गवास के पश्चात् शास्त्रीजी ने प्रधान मन्त्री पद पाने की जरा भी कोशिश नही की, किन्तु जब उन्हे ऊंचे पद पर नियुक्त कर दिया गया तो शास्त्रीजी ने दिन-रात देश की सेवा की और राष्ट्र का सिर ऊंचा किया। अन्त में विश्व-शांति के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व

अर्पण कर दिया।

आज श्रीमती इदिरा गाधी भी इसी उज्ज्वल परपरा को चला रही है। उनका प्रत्येक क्षण राष्ट्र की जटिल समस्याओं को सुलझाने में खर्च होता है। जब मैं नेपाल में था वह वहां आई थी। मैने उनसे पूछा, "आपपर बड़ी भारी जिम्मेदारी आ पडी है। इन सब कठिनाइयो व परेशानियो को आप किस प्रकार सम्हाल रही है?" उन्होंने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया, "श्रीमनजी, मै तो दिन-रात काम मे लगी रहती हू। जितना हो सकता है, जनता की सेवा करती जाती हूं। चिन्ताए व परेशानिया मेरे सिर के ऊपर से निकल जाती है।"

× × ×

इस समय देश की हालत काफी चिन्ताजनक है। स्वार्थ, भ्रष्टाचार और हिसात्मक वातावरण की वजह से लोकतन्त्र की जडे कमजोर होती जा रही है, फिर भी हमें निराश होने की जरूरत नही है। हमें अपने देश के उज्ज्वल भविष्य में विश्वास व श्रद्धा रखनी चाहिए। यदि हम नम्र एवं निस्स्वार्थ बनकर अपने-अपने कार्य में लगे रहे तो भारत अवश्य आगे बढेगा और आज के निराशापूर्ण वातावरण के बीच आशा की किरणे झलकने और फैलने लगेगी।

: ४ :

'मानुषं रूपं'

अर्जुन को कृष्ण भगवान् से बहुत-सा तत्वज्ञान सुनकर भी तसल्ली न हुई। दुनिया में रहकर निष्काम-वृत्ति से अपना धर्म-पालन करने का उच्चतम आदर्श उसने सुना और समझा भी, पर केवल इस ससार की चीजो को देखकर वह संतुष्ट नही होना चाहता था। वह भगवान के 'विश्वरूप' का दर्शन करना चाहता था।

भगवान् ने भक्त की इच्छा पूर्ण की। उसे दिव्य दृष्टि प्रदान कर अपना विशाल, अनन्त और दैदीप्यमान रूप दिखा दिया। पर अनोखा विश्वरूप देखकर अर्जुन घबड़ा गया। उसकी शान्ति भग हो गई। वह हाथ जोड़कर बोला, "आपका अपूर्व रूप देख-कर मेरे रोयें खड़े हो गये है और भ्रम से मेरा मन व्याकुल हो गया है। इसलिए हे देव, आप अपना पहले का ही रूप फिर दिखाइये और प्रसन्न होइये।"

भगवान ने फिर अपना चिर-परिचित मानवरूप धारण कर लिया और अर्जुन के होश ठिकाने आये :

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः॥

गीता के इस ग्यारहवे अध्याय का विद्वान् पण्डित ठीक क्या

अर्थ लगाते है, मुझे मालूम नही, पर मेरे लिए 'रूपमैश्वरम्' और 'मानुष रूप' का आध्यात्मिक अर्थ बिलकुल साफ है। मै मानता हू कि विश्वरूप दर्शन कराकर भगवान् अर्जुन को बतलाना चाहते थे कि मनुष्य को इस ससार के परे की अनोखी दुनिया को जानने की चिन्ता में नही पड़ना चाहिए। मनुष्य मात्र को भूलकर जगलो में तपस्या व साधना करके 'विश्वरूप' के दर्शन भले ही हो जाय, पर यदि हम अपना मानव-धर्म अनासक्त बुद्धि से निभाते रहें तो इसी 'मानुष रूप' मे उच्चतम शक्ति और आनन्द के दर्शन किये जा सकते है। पिड में ही ब्रह्माण्ड की झलक मिल सकती है।

जो हो, मै तो गीता के सारे दर्शन का यही सार मानता हू। सन्यास, योग और कठिन तपस्या की ज़रूरत नही है। मानव-धर्म निभाना ही सबसे बडी साधना है। अपनी मानवता को भूलकर जो 'दर्शन' के रहस्य को खोजने की कोशिश करता है, वह व्याकुल और बेचैन होगा। जिसने 'मानुष रूप' में ही 'रूपैश्वर' के दर्शन कर लिये, उसने सबकुछ पा लिया।

दुनिया इन्सान को हिकारत की निगाह से देखती है, उसे पापी, पतित और नापाक समझती है। अपने कर्त्तव्य को ठुकराकर साधु, सन्यासी लगोटी लगाकर जगलों की ओर भागते है। कठिन योग और तप करते है। फिर भी शाति और आनन्द हाथ नही आते। यह मुमकिन है कि आखिर में उन्हे कामयाबी हासिल हो भी जाती हो, पर इस रास्ते हमें जाने की जरूरत नही। हम तो अपनी घर-गिरस्ती में रहकर इन्सान के कधे-से-कधा मिलाकर अपना दुनियवी काम-काज करते हुए ऊचे-से-ऊंचे और

गहन-से-गहन तत्व को देख और समझ सकते हैं।

ईसा से किसीने पूछा, "आपके सारे उपदेशों का सार क्या है?"

"अपने जैसा ही अपने पड़ोसी से प्यार करो।" उत्तर मिला। इसी तत्व को उन्होंने समझाते हुए कहा कि अगर कोई इन्सान अपने भूखे भाई को अपने दर से लौटा देता है, किसी प्यासे आदमी को पानी देने से इन्कार कर देता या अपने बीमार पडोसी की सार-सम्भाल करने की फिक्र नही करता है तो मौत के बाद खुदा उससे कहेगा कि जब मैं भूखा था तुमने मुझे खाना नही दिया, जब मैं प्यासा था तुमने मेरे खुश्क गले में पानी नही डाला, बीमार था, तुमने मेरी सेवा नही की। वह इन्सान हैरान होकर पूछेगा, "ऐ परमेश्वर, ऐसा मैंने कब किया? आपके लिए ऐसा मैं क्योकर करता?" तब उसे जवाब मिलेगा, "दुनिया में तुमने मेरे बन्दो की सेवा नही की, इसलिए मेरी भी खिदमत नही की।"

इन्सान की सेवा और मुहब्बत का यही पैगाम मुहम्मद-साहब ने भी अरबों को सुनाया। प्रेम व अहिंसा का यही सन्देश इस युग की सबसे ऊंची हस्ती ने अपने सेवाग्राम की छोटी-सी कुटी से सारी दुनिया को दिया।

रामकृष्ण परमहस के पास एक नौजवान आया और उनके चरणो की धूल लेकर उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। राम-कृष्ण ने मुस्कराकर पूछा :

"क्या तुम अकेले ही हो? तुम्हारे घर में और कोई नहीं है?"

"बस, एक बूढी मा है, महाराज।"

"फिर तुम दीक्षा लेकर सन्यासी क्यों बनना चाहते हो ?"

"मै इस ससार को त्यागकर मोक्ष चाहता हू।"

भगवान् रामकृष्ण ने बड़े प्रेम से समझाकर कहा, "बेटा, अपनी बूढी माता को असहाय छोडकर तुम्हे मोक्ष नही मिल सकती। जाओ दिल लगाकर अपनी मां की सेवा करो। तुम्हारा उसीमें कल्याण है, उसीसे तुम्हे मोक्ष मिल जायगी।"

कितनी गहरी है यह नसीहत और वह भी एक ऐसे शख्स की, जो अपने जीवन-मरण का सारा मसला सुलझा चुका था, जिसका एक-एक पल ब्रह्माण्ड की असीम शान्ति और आनन्द मे बीतता था, और जिसके दिल की एक-एक धडकन असंख्य प्राणियों के दिलो की अविरत धडकन थी।

हम ईश्वर की पूजा करते-करते उसके दुखी-गरीब बन्दों की याद नही करते। अपने मन्दिरो और गिरजो के घटो की आवाज में पडोसी की कराहो को नही सुन पाते, मुक्ति और स्वर्ग के बीच अपना मानव-धर्म पालना भूल जाते है। धन्य थे राजा शिवि जो भगवान से यह प्रार्थना कर सके

नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्॥

जिसके दिल मे दूसरो के लिए प्रेम, सहानुभूति और दर्द नही, वह इसान कैसा ? और अगर हमने इन्सानियत खो दी तो फिर बचाने के लिए हमारे पास रह ही क्या जाता है ! हम भले ही प्रगाढ़ ज्ञानी और पण्डित हों, सारे तीर्थों की खाक छान चुके हों, सभी धार्मिक ग्रन्थ कठस्थ कर चुके हो और रोज अपने

कई घटे पूजा-पाठ में बिताते हों, पर यदि हम अपनी मानवता को भूल गए तो हमारा सारा मजहब और इल्म किस काम का !"

कबिरा सोई पीर है जो जाने परपीर !

पुरानी कहावत है—"मन चंगा तो कठौती में गंगा।" अगर हमारा दिल साफ है, अगर हमने अपनी कुदरती मुहब्बत और हमदर्दी कुचल नही डाली है, अगर हम अपने पड़ोसी को अपने जैसा ही प्यार कर सकते है और यदि हमने अपनी आत्मा की खुशबू को सब प्राणियों में सूंघने का प्रयत्न किया है तो फिर हमें मुक्ति, स्वर्ग और परमेश्वर की चिन्ता करने की जरूरत नही। प्राणीमात्र से दूर और कोई खुदा नही हो सकता। अगर है तो उसकी फिक्र करने की हमें आवश्यकता नही। देवता बन जाना आसान है, इंसान बनना कठिन है।

भगवान अपने बंदों के प्रेम के भूखे है। फिर हम भगवान की अर्चना करते समय उनके बदों को कैसे भूल सकते है !

'विश्वरूपदर्शन' के बजाय हमें स्वरूप-दर्शन की ही जरूरत है। मनुष्य अपनी मानवता को पहचानकर उसे जगाकर ऊचे-से-ऊचे आनन्द का रसास्वादन कर सकता है। मनुष्य हीन और नश्वर नही, उसकी मानवता अमर और उन्मुक्त है; उसकी हस्ती इस ब्रह्माण्ड में किसीसे नीची नही। उसके अनुपम गौरव का अनुभव कर 'महाभारत' का कवि भी गा उठा :

न मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् ।

: ५ :

'धर्मं चर'

यह मैं अपना बडा भाग्य समझता हू कि अपने देहावसान के दो दिन पहले ही पडित जवाहरलाल नेहरू ने मेरी पुस्तक "भारतीय संयोजन में समाजवाद" का प्राक्कथन लिखने का समय निकालने की कृपा की। तारीख २७ मई, १९६४ को दिल्ली में उनका स्वर्गारोहण हुआ, और २५ मई को देहरादून के सर्किट हाउस में मेरी पाडुलिपि को पढकर पडितजी ने अपने दो शब्द लिखने का कष्ट किया। बाद मे यह मालूम हुआ कि मेरी पुस्तक की वह भूमिका पूज्य जवाहरलालजी का अतिम सार्वजनिक लेखन था। सामान्यत लोगो की यही धारणा रही है कि पडितजी की 'धर्म' में श्रद्धा नही थी, किन्तु उन्होंने अपने प्राक्कथन में साफ तौर पर लिखा .

"भारत मे हमारे लिए यह जरूरी है कि हम मौजूदा तकनीकी तरीको से फायदा उठावे और खेती तथा उद्योगों की पैदावार बढावे। किन्तु ऐसा करते समय हमे यह नही भूलना चाहिए कि हमारा असली ध्येय मानव के गुणो को और उनके अन्तर्गत धर्म-भावना को बढावा देना है।"

श्रद्धेय पडितजी हमें बार-बार समझाते थे कि किसी राष्ट्र की शक्ति ऊची इमारतो, विशाल मिलों व बडी सेनाओ पर

निर्भर नहीं होती। वह तो उसके स्त्री, पुरुष व नवयुवक नागरिकों के सच्चरित्र पर आधारित होती है। आदरणीय जवाहरलाल-जी अकसर यह भी कहते थे कि अगर किसी देश का भविष्य जानना हो तो ज्योतिषियों के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। उस राष्ट्र के बच्चों की आंखें देखने में ही सारी जानकारी मिल जायगी। अगर बच्चों की आंखों में आशा, हिम्मत, सेवा-भावना व चुस्ती है तो देश का भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल होगा। लेकिन अगर उनकी नज़रों में मायूसी, डर, खुदगर्ज़ी और ढीलापन है तो वह देश कभी ऊंचा न उठ सकेगा।

× × ×

प्राचीन भारत के विश्व-विद्यालयों में जब विद्यार्थी अपना शिक्षण पूरा कर घर जाते थे तो आचार्य उन्हें कुछ विशेष उपदेश देते थे, जिस प्रकार आजकल दीक्षांत समारोह (कनवोकेशन) का आयोजन किया जाता है। शिक्षोपनिषत् में इन उपदेशों का ज़िक्र है। वे दो आदेशों से शुरू होते हैं :

सत्यं वद। धर्मं चर।

सत्य बोलने का उपदेश तो स्पष्ट ही है, किन्तु धर्म का आचरण करने का असली अर्थ क्या है? संस्कृत साहित्य के 'धर्म' शब्द का अनुवाद किसी एक शब्द से नहीं किया जा सकता। अंग्रेज़ी में उसका पर्यायवाची शब्द 'रिलीजन' मानना गलत होगा। 'धर्म' का अर्थ बहुत व्यापक है; उसमें सभी दैवी गुण समा जाते हैं—सत्य, अहिंसा, अभय, ब्रह्मचर्य, परोपकार आदि।

उपनिषदों में कहा गया है कि 'धर्म' वह है जो जगत का

'धारण' करता है, अथवा उसका आधार है : 'धर्मो विश्वस्य जगत. प्रतिष्ठा।" महाभारत के अतिम 'भारत-सावित्री' श्लोको मे हमारे महान् ऋषि ने ससार को एक सनातन् सत्य का दर्शन बडे मार्मिक शब्दो में कराया है :

न जातु कामात् न भयात् न लोभात्
धर्मं त्यजेत् जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥

अर्थात्, अपनी किसी कामना की तृप्ति के लिए, या भय से, या प्राणों की रक्षा के विचार से भी धर्म न छोड़ना चाहिए, क्योकि धर्म नित्य है, और सुख-दु ख अनित्य है। आत्मा नित्य है, पर उसे बन्धन में डालनेवाला शरीर नश्वर है।

मेरे ख्याल से यह श्लोक 'महाभारत' के महाकाव्य का 'बीज-मंत्र' है, सारे जीवन-दर्शन का निचोड़ है। उसका एक-एक शब्द स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है।

महाभारत में "अहिसा परमो धर्म " का आदर्श भी घोपित किया गया है। अहिसा का अर्थ नकारात्मक नही समझना चाहिए। उसका मूल मत्र है 'परोपकार' और प्राणीमात्र की प्रेम-युक्त सेवा। मनु महाराज ने सभी वर्णो के लिए 'धर्म' का सार इस श्लोक मे दे दिया है .

अहिंसा सत्यं अस्तेयं शौचं इंद्रिय-निग्रहः।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन् मनुः॥

रामायण मे सन्तों के गुणो का वर्णन करते हुए कविवर तुलसीदास ने बड़े सरल किन्तु सार-गर्भित शब्दो में 'धर्म' की

व्याख्या की है :

परहित सरिस धरम नहि भाई।
पर पीड़ा सम नहि अधमाई॥

उपनिषदों में भी हमें बताया गया है :

परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीड़नम्।

मेरी दृष्टि से 'धर्म' का सार 'निष्काम-कर्म' में ही निहित है। गीता में 'सर्वभूत हिते रताः' का आदर्श सर्वोत्तम माना है। गांधीजी के प्रिय भजन में भक्त नरसैया ने भी यही गाया है :

वैष्णव जन तो तेने कहीए,
जे पीड़ पराई जाणे रे;
पर दुःखे उपकार करे तोये,
मन अभिमान न आणे रे।

बापू का सारा जीवन इस भावना से ओत-प्रोत था। उनकी प्रत्येक सांस में 'प्राणिनामार्ति-नाशनम्' की मूकध्वनि प्रवाहित होती रहती थी। उनके लिए यही सबसे ऊंचा 'धर्म' था।

× × ×

गीता में यह भी समझाया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी मनोवृत्ति या गुण के अनुसार 'निष्काम-कर्म' करना चाहिए। एक दूसरे की नकल करना उचित नहीं है। हरेक मनुष्य का मिजाज भिन्न होता है, उसमें कुछ विशेषताएं रहती हैं। कोई ज्ञान-प्रधान होता है, तो कोई भक्ति-प्रधान। किसी को कर्म-योग की साधना सहज सध जाती है। अतः अपनी विशिष्ट प्रवृत्ति के अनुसार ही हमें धर्म का आचरण करना

चाहिए .

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभाव नियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।

इसीलिए ब्राह्मणो का स्वाभाविक धर्म ज्ञान-विज्ञान, क्षत्रियों का 'शौर्य' और वैश्यो का 'कृषि-गोरक्षा-वाणिज्य' बतलाया गया है। आधुनिक मनोविज्ञान-शास्त्र भी यही मानता है कि प्रत्येक मानव का एक विशिष्ट 'टेंम्परामेन्ट' (मनोभाव) या 'एप्टीट्यूड' (रुझान) होता है, जिसके अनुसार ही उसका जीवन ढाला जाना श्रेयस्कर है। प्रगतिशील शिक्षण-सस्थाओ में विद्यार्थियों को उनकी 'वृत्ति' के अनुसार ही विविध अभ्यासक्रमो में प्रवेश दिया जाता है। कुछ छात्र गणित व विज्ञान के पाठ्यक्रमो में बहुत सतोषजनक प्रगति करते है, और दूसरे इन विषयो में समरस ही नही हो पाते। किसी विद्यार्थी को कला व साहित्य में विशेष रुचि होती है और वह इन दिशाओ में तेजी से उन्नति कर लेता है। दूसरे नवयुवक कला से कोसो दूर रहते है !

किन्तु 'धर्म चर' उपदेश का सार यही है कि हम अपने स्वभाव के अनुसार कार्य करते हुए सत्य, अहिसा और करुणा जैसे जीवन के मूलभूत आदर्शो का पालन करे; हम स्वार्थ के बजाय परमार्थ में आनन्द का अनुभव करे। जो कुछ काम करे, वह लगन, सचाई व कुशलता से किया जाय, और फल भगवान् के चरणो में अर्पित कर दिया जाय । सत कबीर एक जुलाहे थे और रैदास एक चमार, लेकिन अपने साधारण पेशे का काम करते हुए भी वे उच्च कोटि के ऋषियो की श्रेणी में गिने जाते हैं। पुराणो मे हम कथाए पढते है कि कसाई का व्यवसाय करते

हुए भी कुछ व्यक्ति ऊंची-से-ऊंची भक्ति व आध्यात्मिक साधना प्राप्त कर सके थे। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को क्षत्री होने के नाते यही प्रेरणा दी कि उठो और वीरता से किन्तु अनासक्ति से युद्ध करो। हम अपने गुणों के अनुसार जो कार्य करे वह 'कृष्णार्पण' की भावना से करे, उसमें अह-भाव न रहे। बस यही 'धर्म' का सार है।

केरल प्रदेश के एक वयोवृद्ध सन्त नेपाल में काठमाडू के नजदीक की पहाडियो व वन में वहुत वर्षो तक रहे। कुछ साल पहले ही १३७ वरस की उम्र में उनका निर्वाण हुआ। उनका गुरू का नाम स्वामी गोविन्दानन्द भारती था। चूकि नेपाल में वह काफी अर्से तक शिवपुरी नाम की पहाड़ी पर ध्यान करते रहे थे, इसलिए उन्हे 'शिवपुरी वावा' के नाम से पुकारा जाता था। सन् १९६३ में जब हमारे तत्कालीन राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् नेपाल पधारे थे तो वह हवाई अड्डे से सीधे शिवपुरी वावा के आश्रम में गये और उसके पश्चात् ही शाही अतिथिगृह की ओर प्रस्थान किया। डा० राधाकृष्णन्जी स्वयं एक महान् दार्शनिक है, लेकिन उनके मन में शिवपुरी वावा के प्रति वहुत आदर था। कुछ समय पहले मैं भी एक मित्र के साथ इन महात्मा के आश्रम का स्थान देखने गया और वहां के वातावरण को देखकर वहुत प्रभावित हुआ। उनके गोलोकवासी होने के वाद भी उस जगह में आध्यात्मिक प्रेरणा का स्रोत है। उनके एक पुराने शिष्य ने वताया कि शरीर छोड़ते समय शिवपुरी वावा के अन्तिम शब्द इस प्रकार थे :

Live right life Worship God. That is all !

अर्थात्, सही जीवन जीओ। ईश्वर की आराधना करो। इतना ही पर्याप्त है।

इन तीन छोटे वाक्यों मे ही उन्होंने अपनी समस्त जीवन-साधना का सारांश ससार के लिए सुरक्षित रख दिया। उनकी दृष्टि में यही सर्वोत्तम 'धर्म' है।

हमें यह भी श्रद्धा रखनी चाहिए कि यदि हमारा जीवन सही व सच्चा होगा तो परमात्मा भी हमारी रक्षा करेंगे। मनुस्मृति मे हमें विश्वास दिलाया गया है कि यदि हम धर्म की रक्षा करेंगे तो धर्म हमारी रक्षा करेगा

धर्म एव हतो हंति, धर्मो रक्षति रक्षितः

और सच पूछिए तो धर्म-भावना की पराकाष्ठा इसीमें है कि हम अपनी हस्ती या व्यक्तित्व भगवान् के हवाले कर दे और कर्तव्य की धारणा से जो कुछ करे वह उसीकी स्मृति मे अर्पित कर दे। इस प्रकार हम 'धर्म' के भी परे उठकर परमेश्वर की शरण में चले जाते है और अन्त में उसीकी उसी अमर-ज्योति में लीन हो जाते है

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

: ६ :

'साहिब मिले सबूरी में !'

जब मैं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रधान मन्त्री था तब आएदिन मेरे पास कई नौजवान आते थे जो बड़ी शीघ्रता से युवक कांग्रेस के सदस्य बनकर राजनीति में प्रवेश करना चाहते थे। उनकी आकांक्षा रहती थी कि थोड़े समय काम करने के बाद ही उन्हे पार्लमिंट या किसी विधान-सभा का कांग्रेस-टिकट मिल जाय। इसलिए चुनावों के कुछ महीने पहले से नवयुवकों का आना-जाना तीव्रता से प्रारम्भ हो जाता था। मैं इन नौजवानों को अक्सर समझाने की कोशिश करता था कि राजनीति में सफल होना आसान नही है। बड़े नेताओं के जीवन का अध्ययन करने से मालूम होता है कि उन्होंने शुरू में कितना परिश्रम व त्याग किया और धीरज रखा। नवयुवकों को भी अपने बुजुर्गों की जिन्दगी से नसीहत लेनी चाहिए और काफी वर्षों तक बड़ी लगन व मेहनत से किसी रचनात्मक काम में लगे रहना चाहिए। काफी अर्से तक कुछ ठोस कार्य करने के बाद ही उन्हें राजनीति में सफलता मिल सकती है। यदि वे सब्र रखेंगे तो उनका भविष्य उज्ज्वल होगा। उतावलेपन से उनकी तमन्नाएं पूरी न हो सकेंगी।

किन्तु इन नौजवानों को मेरी यह नसीहत अक्सर अच्छी

नहीं लगती थी। जैसे-जैसे चुनाव नजदीक आते, उनकी सरगर्मी बढ़ती जाती। अन्त मे मैने एक नियम ही बना दिया था कि युवक काग्रेस के उसी सदस्य को टिकट दिया जा सकेगा जो सस्था में कम-से-कम पाच वर्ष तक व्यवस्थित काम कर चुका हो। इस नियम का अच्छा असर हुआ और बिल्कुल स्वार्थी नवयुवक निराश होकर चले गए। जो नौजवान आगे आये वे अपेक्षाकृत अच्छे थे। उनमें सेवाभाव व लगन थी और कुछ तो बाद में काग्रेस के योग्य कार्यकर्ता बन सके। उन्हें बाद में टिकट भी सहज मिल गया।

× × ×

सन् १९३६ की एक घटना याद आती है। गाधीजी उसी साल मई महीने में वर्धा से सेवाग्राम में रहने के लिए चले गये थे। शुरू में तो वहा केवल एक झोंपड़ी श्रद्धेय जमनालाल बजाज ने तैयार करवाई थी। धीरे-धीरे कई कुटियां बनती गई। गाधीजी ने गाववालो से भी सम्पर्क जोड़ना शुरू किया और छुआछूत आदि के विषय में उन्हे धीरज से समझाया। आश्रम के कार्यकर्ता भी गाव में दिन-प्रतिदिन जाते थे। स्वयं सफाई करते व गाववालो को ऐसा करने का प्रोत्साहन भी देते। लेकिन कई महीनो तक नियमित ढग से सफाई व छुआछूत-निवारण का काम करने के बावजूद सेवाग्राम की जनता के जीवन मे कोई फर्क नही पडा। एक दिन कई आश्रमवासी गाधीजी के पास उनकी कुटिया में जाकर कहने लगे, "बापूजी, हमें काम करते महीनों हो गये, लेकिन इस गाव के लोग तो बड़े अज्ञानी व हठी मालूम होते

है। उनकी रहन-सहन में जरा भी फर्क नही पड़ा है।"

गाधीजी मुस्कराकर कहने लगे "बस, इतने में ही आपने धीरज खो दिया। जिस ग्रामीण जनता की हमने सैकड़ों सालों से उपेक्षा की है, उसकी नि.स्वार्थ सेवा कम-से-कम कुछ वर्ष तो कीजिये। आपको तो बड़े सब्र व धीरज से काम लेना होगा। इस तरह के कामों में करिश्मे देखने की उम्मीद नही रखनी चाहिए।"

और विनोबाजी तो पौनार आश्रम से सुरगांव की ओर रोज न जाने कितने वर्षों तक जाते रहे। हाथ में फावडा और सिर पर टोकरी रखकर सुरगाव में वह रोज सफाई करते, ग्रामवासी उनका काम देखते रहते, लेकिन खुद सफाई की क्रिया में शरीक न होते। शायद पन्द्रह वर्ष बाद ही उन्हें सूझा कि अब विनोबाजी को कष्ट नही देना चाहिए और यह काम खुद सामूहिक तौर पर उठा लेना उनका कर्तव्य है। विनोबाजी का सब्र सचमुच कमाल का ही रहा।

× × ×

कुछ वर्ष पहले काठमांडू में माउन्ट एवरेस्ट (सगरमाथा) के भारतीय विजेताओं की टीम आई थी। हमने उनके सम्मान में भारतीय राजदूतावास के प्रागण में एक विशाल स्वागत-समारोह का आयोजन किया, जिसमें नेपाल के महाराजाधिराज महेन्द्र भी पधारे। उस समय टीम के नेता श्री कोहली ने एक बड़े मार्के की बात कही : "विजय प्राप्त होने के पहले उन्हे लगभग तीन सप्ताह तक बड़ी परेशानी तथा कष्ट का सामना करना पड़ा। मौसम बहुत ही खराब रहा। पच्चीस हजार फुट की ऊंचाई पर

'बेस कैम्प' में अधिक रहना उनके लिए नामुमकिन-सा लगने लगा। एक दिन तो उन लोगों ने क़रीब़-करीब यही तय किया कि अब वापस चल दिया जाय। लेकिन फिर उनमें से कुछ सदस्यो ने कहा, 'हमे हिम्मत नही हारनी चाहिए। हम सब्र रखे। धीरज का फल मीठा होता है।' और ईश्वर की कृपा से कुछ दिन बाद ही मौसम खुल गया, तेज हवा धीमी हो गई। यात्रीदल ऊपर की ओर चल पडा और सगरमाथा की शिखर पर एक बार नही, चार बार सफलतापूर्वक चढ सका।"

कहत कबीर सुनो भाई साधो,
साहिब मिले सबूरी में।

× × ×

रामायण एक अद्भुत ग्रन्थ है। उसमें गोस्वामी तुलसीदासजी ने विभिन्न अवसरो पर अपनी चौपाइयों, दोहो व सोरठो में धर्म-ग्रन्थो का निचोड बडे सरल किन्तु गहरे शब्दो में प्रकट किया है। उत्तरकाण्ड में काकभुशडजी गरुडजी से एक प्रश्न के रूप मे अध्यात्म का साराश कह देते हैं·

कोउ विश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिअ॥

और फिर अगली चौपाई में उसका कारण भी समझा देते है:

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुं नाही॥

बिना सब्र व सतोष के वासनाए या कामनाए नष्ट नही हो सकती और कामनाओं के रहते स्वप्न में भी सुख प्राप्त नही हो

सकता।

भगवान कृष्ण ने गीता के बारहवें अध्याय में अपने भक्तों के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है :

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

अर्थात्, जो ध्यानयोग में युक्त, निरन्तर सन्तुष्ट है तथा इन्द्रियों को वश में किये हुए दृढ निश्चयवाला है और अपने मन व बुद्धि को मुझे ही अर्पित कर देता है—ऐसा भक्त मुझे प्रिय है।

'मनुस्मृति' में भी यही सन्देश दुहराया गया है :

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।

याने सुख चाहनेवाले पुरुष को सन्तोषी और संयमी होना चाहिए।

भगवान बुद्ध ने आध्यात्मिक अनुभूति का गूढ़ तत्व अपने प्रिय शिष्यों को इन शब्दों में दिया था :

आरोग्य परमालाभा सन्तुट्ठी परमं धनं।

× × ×

यह बिलकुल सही है कि जीवन में बिना संयम के संतोष व सब प्राप्त नहीं हो सकते। सभी सन्तों ने बार-बार ऊंचे स्वर से गाया है कि मन व इन्द्रियों की कभी तृप्ति नहीं होती। उनको सन्तुष्ट करने का हम जितना प्रयत्न करते हैं उतनी ही वासना बढ़ती जाती है। यह कोई दार्शनिक कल्पना का विषय नहीं है और न इसमें बहुत गहरी 'फिलोसफी' है, जिसे विद्वान् ही समझ सकते हैं। हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में पग-पग पर यही

अनुभव मिलता है कि हम अपनी शारीरिक व स्थूल आवश्यकताओं को जितना बढ़ाते जाते है उतनी ही परेशानी व असन्तोष बढ़ता जाता है।

हमारे समाज में शराब पीनेवालों की तो दयनीय दशा सर्वविदित है ही। जितनी अधिक पीते जाते है उतनी ही अधिक पीने की लालसा जागृत होती है और अन्त में यमराज ही इस वासना से छुटकारा देते हैं। सिगरेट पीनेवालो का भी बुरा हाल है। पहले शौकिया चुरट पीना शुरू होता है। धीरे-धीरे आदत से मजबूर होकर काफी लोग 'चेन स्मोकर' बन जाते है। एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और तीसरी के बाद चौथी, यह सिलसिला टूटता ही नही है। धन की बर्बादी के अलावा कई गम्भीर बीमारिया-चारो ओर से घेर लेती है। अब तो डाक्टरो का साफ कहना है कि 'केन्सर' के रोग का मुख्य कारण धूम्रपान है। फिर भी बहुत से लोग आदत से लाचार है। घर का खर्च भी बढता जाता है। उसे पूरा करने के लिए फिर भ्रष्टाचार की शुरुआत हो जाती है और एक बार फिसलना शुरू हुआ तो फिर अन्त कहां ? जीवन में सभी तरह की बुराइया प्रवेश कर लेती है और ज्यों-ज्यो भोग-सामग्री इकट्ठी होती जाती है, मनुष्य का मन उत्तेजित व उद्विग्न होता जाता है। काम-वासना की तो कोई सीमा ही नही है। अग्नि के ऊपर जितना घी डालिये वह उतनी ही भड़कती जाती है। अन्त मे मानव सूरदास की इन पंक्तियों को याद कर क्रन्दन करता है .

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।

जब नचिकेता ने यमराज से 'आत्म-ज्ञान' का तीसरा वर मागा तो उसे भांति-भांति के प्रलोभन दिये गए। सन्तान, धन, सुवर्ण, हाथी-घोड़े, विशाल साम्राज्य और स्वर्ग की अप्सराएँ। किन्तु नचिकेता ज़रा भी विचलित न हुआ। उसने निवेदन किया :

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत् त्वा।

अर्थात्, मनुष्य की धन से भी कभी तृप्ति नही हो सकती। भगवन्, आपके दर्शन पाकर हम धन तो प्राप्त कर ही लेंगे, किन्तु मागने योग्य वर तो 'आत्म-ज्ञान' ही है।

अन्त में नचिकेता की सात्विक वृत्ति से प्रसन्न होकर यमराज ने उसे 'प्रेय' व 'श्रेय' का अन्तर समझाया :

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः
तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

अर्थात्, श्रेय (आत्म-कल्याण) और प्रेय (लौकिक सुख) दोनो मनुष्यों के सामने आकर खडे रहते है। चतुर आदमी दोनों की उचित परीक्षा करके उनके चुनाव मे विवेक से काम लेता है। बुद्धिमान् पुरुष प्रेय की अपेक्षा श्रेय को ही पसन्द करता है। मूर्ख आदमी प्रेय को योगक्षेम (सासारिक लाभ) का साधन समझकर उसे अपनाता है।

यह श्लोक तो हमारी दैनिक प्रार्थना का एक महत्वपूर्ण अग बन गया है। उस सनातन सत्य को हम अपने मन में अच्छी तरह बैठा सके तो 'साहिब मिले सबूरी में' का अन्दरनी रहस्य

ठीक तौर पर समझ में आ जायगा।

× ×

इसका यह अर्थ नही हो सकता कि हम अपने देश में प्रत्येक नागरिक को न्यूनतम सुख-सुविधाए देने का पूरा प्रयत्न ही न करे। हरेक कुटुम्ब के लिए अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा व चिकित्सा के आवश्यक साधन तो उपलब्ध होने ही चाहिए। गरीबी को 'कर्म की गति' मानकर बैठ जाना घोर अन्याय होगा। लेकिन साथ ही हमे यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जीवन-स्तर को लगातार ऊचा उठाते रहने की होड़ में फंसना भी मूर्खता होगी। अमरीका या रूस जैसे विकसित राष्ट्रो में भी मानव दुखी हैं, उसे सन्तोष का सुख नही मिल पाता। 'मृग-जल' की ओर यह जितनी तेजी से भागने का प्रयत्न करता है उतना ही 'प्रेय' के जाल में फसता जा रहा है। अग्रेजी कवि गोल्डस्मिथ ने इस विचार को बडी खूबी से पेश किया था :

"धन का सग्रह बढता है और मानव का ह्रास होता है।"

यूरोप के प्रसिद्ध दार्शनिक रोम्या रोला ने इसी ख्याल को जाहिर करते हुए लिखा है :

"मेरे पास जितने भौतिक साधन एकत्र होते जाते है उतना ही मेरा व्यक्तित्व कम होता जा रहा है।"

इसीलिए गाधीजी इस बात पर बहुत जोर देते थे कि रहन-सहन के स्तर को ऊंचा उठाने के साथ-साथ हमें नैतिक व आध्यात्मिक स्तर को भी अधिक उच्च बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए, नही तो आर्थिक विकास द्वारा हमारे समाज में भ्रष्टाचार व बेईमानी को उत्तेजन मिलना बिल्कुल स्वाभाविक होगा।

आचार्य विनोवा ने कई वार एक वड़ी सारगर्भित व रोचक वात कही—"हमें जल की तरह नीचे की ओर वहते रहना चाहिए। जल कभी ऊपर वहने की कोशिश नहीं करता। वह तो अपनी करुणापूर्ण धारा से नीचे की कमी व दुःख को दूर करने का अविरल प्रयत्न करता रहता है। उदाहरणार्थ एक मनुष्य जो सौ रुपये कमाता है वह अपने नीचे देखकर सिर्फ पचास रुपये कमाने वाले भाई का कष्ट कुछ हद तक दूर करने की कोशिश करे तो थोड़े सतोष का अनुभव करे। लेकिन यदि वह ऊपर की ओर हजार रुपये कमानेवाले की तरफ ही देखता रहेगा तो द्वेष की अग्नि में जलकर स्वयं दुखी होगा और समाज को भी दुखी वनायेगा।"

वस्तुतः यदि हमारे जीवन में विवेक व सुमति होगी तो चारों ओर सब्र व सन्तोप का वातावरण उत्पन्न होता रहेगा, नही तो फिर धन-वैभव होते हुए भी दुःख व परेशानी का कोई छोर नही है :

जहां सुमति तहं सम्पति नाना।
जहां कुमति तहं विपति निदाना॥

विवेक व सुमति का विकास तभी हो सकता है जब हम अपने असली आत्म-गौरव को पहचानने लगें और नर को नारायण के प्रतिविम्ब के रूप में ही स्मरण करें। तब हमें न धन का लोभ रहेगा और न विपत्तियो से व्याकुलता पैदा होगी :

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पत् नारायण स्मृतिः॥"

: ७ :

'ईश्वर-अल्ला तेरे नाम !'

सन् १९४६ में जब देश के विभाजन के काले बादल भारत के ऊपर मडरा रहे थे तब गांधीजी ने राष्ट्र की अखण्डता व एकता कायम रखने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगादी थी। वे उन दिनों बगाल में भ्रमण कर रहे थे। मै भी कुछ समय उनके साथ था। वे अपनी हरेक प्रार्थना-सभा के अन्त में ये पक्तियां गवाते थे .

रघुपति राघव राजा राम।
पतित पावन सीता राम॥
ईश्वर अल्ला तेरे नाम।
सबको सन्मति दे भगवान॥

बापू जनता को आग्रहपूर्वक समझाते थे कि आजाद हिन्दुस्तान में सभी मज़हबों का बराबर का स्थान रहेगा, सब धर्मो के प्रति समान आदर रखा जायगा। स्वतत्र भारत में हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, ईसाई, सिख, पारसी सभी भाई-भाई की तरह रह सकेंगे। इसलिए मजहब के नाम पर देश के बटवारे का ख्याल त्याग देना चाहिए। भारत के विभाजन से बड़ा अनर्थ होगा। राष्ट्र का बहुत नुकसान होगा।

लेकिन देश ने गाधीजी की बुलन्द आवाज सुनने से

इन्कार किया। काग्रेस के करीव सभी वडे नेताओ ने विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया और आखिर पाकिस्तान का जन्म हुआ। वह एक इस्लामी राज्य वना। किन्तु भारत फिर भी एक 'सेक्यूलर' स्टेट ही रहा।

चूकि आज भी हिन्दुस्तान में हिन्दुओ के अलावा मुसलमान, बुद्ध, जैन, ईसाई आदि घर्मों के अनुयाइयो की काफी बड़ी संख्या है, इसलिए उसे एक 'सेक्यूलर' राज्य बनाए रखना हितकर व वाछनीय है। लेकिन दुर्भाग्यवश हमने स्वराज्य-प्राप्ति के काफी वर्षो वाद तक 'सेक्यूलर' शव्द का अर्थ या तो स्वयं ठीक नही समझा या हम जनता को सही ढंग से समझा न सके। हम मजहव के नाम से ही शर्माते रहे, मानो 'सेक्यूलर' राज्य में घर्म का कोई स्थान ही नही हो सकता। हां, यूरोप में 'सेक्यूलर' शव्द का अर्थ 'घर्मविहीन' ही रहा था। वहा पोप के राज्य से जनता इतनी परेशान हो चुकी थी कि उसने ऐसी 'सेक्यूलर' राज्य-व्यवस्था स्थापित की, जिसमें मजहव से कोई वास्ता न रहे। किन्तु भारत में गाधीजी व पडित नेहरू आदि ने 'सेक्यूलर' शव्द को 'सर्वघर्म-समभावी राज्य' की दृष्टि से ही अपनाया। यह सही भी था, क्योकि जिस राज्य में कई मजहवों का बड़ी मात्रा मे अस्तित्व हो वहा सबको मिल-जुलकर एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करके ही रहना होगा, नही तो देश के टुकड़े-टुकडे हो जाने का हमेशा डर रहेगा।

× × ×

सैकड़ों वर्ष पहले भारत में सन्त आनन्दघन ने भी बड़ी श्रद्धा से गाया था:

'ईश्वर-अल्ला तेरे नाम'

राम कहो, रहमान कहो कोऊ
कान्ह कहो, महादेव री।
पारसनाथ कहो, कोऊ ब्रह्मा,
सकल ब्रह्म स्वयमेव री।।

यह भजन गांधीजी को भी बडा प्रिय था। उनकी प्रार्थना-सभाओ मे वह अकसर सामूहिक रूप से गाया जाता था। हजारों वर्षो से हमारी सास्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक व राजनैतिक परम्परा समन्वय की रही है, विविधता में एकता की रही है। इसी आदर्श के ज़रिए भारत बहुत-से बाहरी आक्रमणो के बावजूद अखंड बना रहा। नई-नई तहज़ीबो की धाराए आईं और राष्ट्र के अगाध समुद्र मे समाती गई। यही परम्परा हमारी भारतीय शक्ति व सजीवता की बुनियाद रही है। कुछ वर्ष पहले मेरी कविताओं के नवीन सग्रह में ये पक्तिया प्रकाशित हुई थी :

विविधता में एकता का
गान ही गौरव हमारा।
शान भारत की यही है,
युगों का सौरभ हमारा।

× × ×

लेकिन सास्कृतिक व धार्मिक समन्वय का यह अर्थ कदापि नही हो सकता कि हम मज़हब को ही हीन समझे और उसे राष्ट्र के जीवन मे उचित स्थान व सम्मान देने में सकोच करे व हिचकिचाये। हमारे 'सेक्यूलर' राज्य मे एक हिन्दू को अच्छा हिन्दू बनना चाहिए, जो अपने धर्म की जानकारी के अलावा

दूसरों के धर्मों के बुनियादी सिद्धांतों के प्रति भी समुचित आदर रखे। इसी तरह एक मुसलमान या ईसाई को अधिक अच्छा मुसलमान व ईसाई बनने में सतोष होना चाहिए और साथ-ही-साथ दूसरे मजहबों की भी कद्र करना चाहिए। 'सेक्यूलर' के लिए आजकल हिन्दी में 'धर्मनिरपेक्ष' शब्द प्रचलित हो गया है। मेरी दृष्टि से यह शब्द सार-गर्भित नही है। वह नकारात्मक है। सही शब्द तो 'सर्वधर्मसमभावी' राज्य होगा, यद्यपि वह जरा बडा लगता है और शायद कुछ अटपटा भी।

यूरोप में इस शब्द का भले ही दूसरा अर्थ रहा हो, किन्तु भारत को 'सेक्यूलर' राज्य तभी कहा जायगा जब वहा के प्रत्येक नागरिक को अपने-अपने धर्म का पालन करने का पूरा अवसर हो और विभिन्न मजहबों के प्रति जनता की सद्भावना हो।

यदि इस सबध में अभी भी किसीके मन मे शंका है तो वह शीघ्रता से निकाल देने में ही हमारा भला है। धर्म-भावना भारत की प्राचीन परम्परा का अविभाज्य अंग रहा है। हमारे जीवन मे यदि मजहब का स्थान न रहा तो फिर हम कही के न रहेंगे। हम सब उस बिना पतवार की नाव जैसे बन जायंगे, जिसे मझधार मे तूफान के झोंकों से उलटकर जल की समाधि लेनी पडती है। भारत की व पाश्चात्य देशो की सभ्यता में एक मूलभूत अंतर रहा है। भारत में आध्यात्मिकता व रूहानियत को सर्वोपरि स्थान दिया जाता रहा है और यूरोप आदि देशो में आर्थिक व भौतिक विकास व समृद्धि को। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस बुनियादी सत्य को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त

किया है :

"भारत में एक किसान दिन-भर परिश्रम करके, शाम को भजन-कीर्तन करता हुआ अपनी थकान मिटाने का प्रयत्न करता है, किन्तु यूरोप मे एक मजदूर को शाम को अपनी थकान मिटाने के लिए 'शराबखाने' में जाने के सिवा कुछ और सूझता ही नही है।"

यह हमारा सचमुच बडा दुर्भाग्य है कि इन दिनों भारत मे भी शराबखोरी व भौतिकवाद का नशा बडी तेजी से फैलता जा रहा है, विशेषकर शहरो के नौजवानो में। फिर भी हमारे देहातो मे भारत की प्राचीन सभ्यता काफी हद तक अभी जिन्दा है और रहेगी।

× × ×

देश की यह भी बदनसीबी रही है कि हम अकसर बाते तो बडी करते है, लेकिन अन्त में छोटी बातो में फस जाते है। इसी वजह से हिन्दू धर्म में धीरे-धीरे सकुचित भावनाए पैदा हो गई और अस्पृश्यता या छुआछूत का भूत हमारे सिर पर हावी हो गया। इस्लाम में भी शिया-सुन्नियो की कलह पैदा हुई और ईसाइयो में न जाने कितने तरह के सम्प्रदाय कायम होते गए। इसी तरह बौद्ध व जैनियो में भी आपसी झगडे खडे हुए और उनकी मौलिक शक्ति घटती गई। आचार्य काकासाहब ने ठीक ही कहा है कि हम सब एक बडे राष्ट्र के छोटे लोग है। जब हमारा नजरिया तग बन जाता है, हमारा दिल व दिमाग सकुचित हो जाता है, तभी हमारी प्रगति मन्द पड़ जाती है और हम नीचे की ओर गिरने लगते है।

किन्तु हमें निराश कदापि नही होना चाहिए। भारत की यह भी भव्य परम्परा रही है कि हम अकसर ठोकरे खाकर गिर जाते है, लेकिन फिर हिम्मत से उठकर खडे हो जाते हैं और आगे कदम बढाने लगते है। ऋषियों-मुनियों के इस देश को आज भी ऐसा ही करना है। हृदय में अडिग श्रद्धा व उत्साह किन्तु नम्रता रखकर भारत को दुनिया के सामने एक आदर्श राष्ट्र के रूप में विकसित करना हमारा कर्तव्य हो जाता है।

× × ×

नेपाल एक छोटा-सा लगभग एक करोड आबादी का देश हैं। वह ससार में एक-मात्र हिन्दू राष्ट्र है। किन्तु वहां धार्मिक सकुचितता का वातावरण नही है। नेपाल में हिन्दुओ के अलावा बौद्धों की भी काफी संख्या है। लेकिन हिन्दू मदिरों में बुद्ध-अनुयायी भक्त बड़ी श्रद्धा से जाते है। इसी प्रकार हिन्दू-जन भी बुद्ध-मदिरों में नियमित ढंग से और आदर-भाव से प्रवेश करते हैं। नेपाल के इतिहास में हिन्दू-बौद्धों का कभी धार्मिक सघर्ष नही हुआ। इन दो मुख्य धर्मों के अतिरिक्त वहां मुसलमानों की सख्या भी करीब पाच फीसदी है। ईसाई व सिग्व भी हैं, लेकिन बहुत कम। नेपाल में सब धर्मों को अपना पूजा-पाठ व अन्य सस्कार करते रहने की पूरी स्वतंत्रता है। हां, जितने राजकीय व शाही समारोह होते है, उनमें वैदिक हिन्दू धर्म की परम्परा अपनाई जाती है।

लेकिन नेपाल में धर्म-परिवर्तन की इजाजत नही है। वह गैर-कानूनी है और ऐसा करने पर छ. वर्ष की कड़ी सजा का विधान है। धर्म-परिवर्तन करने व करानेवाले दोनों को ही

यह दड लागू होता है। इस सजा से बचने के लिए कुछ लोग भारत चले जाते है और धर्म को बदलकर फिर नेपाल वापस आ जाते है। ईसाई पादरियो ने इस तरह कुछ लोगों का धर्म-परिवर्तन कराया है, किन्तु यह सख्या अपेक्षाकृत कम होगी।

मेरा ख्याल है कि भारत के 'सेक्यूलर' या 'धर्म-समभावी' राज्य मे भी धर्म-परिवर्तन की इजाजत नही होनी चाहिए। यदि राज्य की निगाह में सभी धर्म समान हैं तो फिर एक मजहब से दूसरे मजहब में परिवर्तन करने का क्या अर्थ ! इस प्रकार के धर्म-परिवर्तन से हमारे देश में कई तरह की राजनैतिक पेचीदगिया खडी हो गई है। इसलिए हमें भविष्य में इस बारे में काफी सावधानी से काम लेना होगा। नागालैड व मीजो के सीमावर्ती पहाडी क्षेत्रो में ईसाई पादरियो ने करीब सौ फीसदी जनता को क्रिश्चियन बना लिया है। वहा के लोग आज अपने को भारतीय कहने मे सकोच करते है और स्वतत्र राष्ट्र के रूप मे मान्यता चाहते है। पादरियो ने इन क्षेत्रों की जनता की बड़ी लगन व परिश्रम से जो निरतर सेवा की है, उसके लिए हमें उन्हे हार्दिक धन्यवाद देना चाहिए। लेकिन उनके धर्म-परिवर्तन के आन्दोलन से हमारे राष्ट्र को बड़ी परेशानी का सामना करना पड रहा है, यह भी हमारे दिमाग मे स्पष्ट हो जाना चाहिए न ? किसी विशेष परिस्थिति मे कोई व्यक्ति अपना धर्म स्वेच्छा से बदलने की तीव्र इच्छा जाहिर करे तो शासन की आज्ञा से ऐसी इजाजत भले ही दे दी जाय, किन्तु गरीबी व अज्ञानता का लाभ उठाकर बडी सख्या मे धर्म-परिवर्तन करना तो सचमुच गभीर

जुर्म होना चाहिए।

हां, भारत जैसे 'सेक्यूलर' स्टेट में यह जरूरी है कि हरेक नवयुवक को अपने धर्म के अलावा राष्ट्र के दूसरे मजहवों के वुनियादी आदर्शों का सामान्य ज्ञान होना चाहिए। तभी वह दूसरों के धर्मों के प्रति आदर की भावना रख सकता है। इस दृष्टि से हमारे स्कूलों व कालिजों में धार्मिक व नैतिक शिक्षा का प्रवन्ध कर देना विलकुल आवश्यक है। प्राथमिक शालाओं में सभी मजहवों के महापुरुषो के जीवन की कुछ विशेष घटनाए पढानी चाहिए, जिनका वच्चों के मन पर गहरा असर पड़ सके। हाई स्कूल के विद्यार्थियों को विभिन्न धर्मों के मूल-सिद्धान्त पढाये जा सकते है। कालिजों में धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन कराया जा सकता है।

मै अक्सर महसूस करता हू कि श्रद्धेय राजाजी की वर्तमान राजनीति से काफी लोग सहमत नही होगे, किन्तु 'रामायण' व 'महाभारत' की दो पुस्तके वडे सुन्दर ढंग से लिखकर उन्होंने देश की स्थायी सेवा की है। मेरे ख्याल से भारत के सभी नवयुवकों को ये दोनो ग्रन्थ अवश्य पढ लेने चाहिए। इसी प्रकार हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने कई वड़े उपयोगी ग्रथ लिखे है, जो धार्मिक शिक्षा की उच्च कक्षाओं मे हमारे नौजवानों को पढाये जा सकते हैं। गांधीजी की 'आत्म-कथा' भी इसी तरह की पुस्तकों में शामिल कर लेनी चाहिए। नैतिक या धार्मिक शिक्षा के लिए इससे अच्छी किताव और क्या होगी?

× × ×

भारत में हिन्दुओं की काफी शिकायत रही है कि कांग्रेस

द्वारा उन्हे आजादी के बाद न्याय नही मिला है। उनका कहना है कि भारत के 'सेक्यूलर' स्टेट में बहुसंख्या मे होना उनकी कोई गलती नही है। यह सही है कि देश की अल्पसख्यक जातियो व धर्मो के प्रति हिन्दुओ की सहानुभूति व सहिष्णुतापूर्ण व्यवहार होना चाहिए, किन्तु इसका यह अर्थ नही हो सकता कि किसी हिन्दू को अपनेको हिन्दू कहने मे भी शर्म महसूस करनी पड़े। 'सर्वधर्म समभावी' राज्य में हिन्दुओ को भी अपना धर्म पालन करने व प्रचार करने का पूरा अवसर मिलना चाहिए। इसमें किसी को एतराज नही होना चाहिए, बशर्ते कि यह प्रचार किसी दूसरे मजहब के विरोध मे न हो। एक हिन्दू अपने धर्म का पालन करते हुए भी 'सेक्यूलर' स्टेट का अच्छा नागरिक रह सकता है। उसी तरह एक मुसलमान या ईसाई। खराबी तभी पैदा होगी जब हम तग नजरिया अपनावे और विद्वेप व असहिष्णुता की साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का इजहार करने लगे। यह बिलकुल स्पष्ट है कि भारत जैसे विशाल देश की अखडता कायम रखने के लिए हम सभीको बड़े दिल व दिमाग का बनना होगा। हजारो वर्ष पहले अथर्ववेद के ऋषि-कवि ने हमें आदेश दिया था :

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः

अर्थात्, तुम्हारा हृदय व मन समान हो और तुम्हारे व्यवहार मे द्वेप न रहे।

हमे अपने राष्ट्रीय गान की इन पक्तियों का भी सदा स्मरण रखना चाहिए, जिन्हे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने बड़ी गहरी भावना

से गाया था :

अहरह तव आह्वान प्रचारित, सुनि तव उदार वाणी।
हिन्दु-बौद्ध-सिख-जैन-पारसिक, मुसलमान क्रिस्तानी।
पूरब पश्चिम आसे, तव सिंहासन पासे।
प्रेमाहार हय गाथा।
जनगण-ऐक्य विधायक जय हे, भारत भाग्य विधाता।

: ८ :

'योगः कर्मसु कौशलम्'

कुछ महीने पहले पूज्य पिताजी की बीमारी व अंत में स्वर्ग-वास के समय मुझे अपने जन्म-स्थान इटावा में रहने का अवसर मिला। गम्भीर बीमारी की हालत में भी पिताजी से काफ़ी आध्यात्मिक चर्चाए हुई, जिनसे हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पडा।

आदरणीय पिताजी की ज़िन्दगी स्वय अनासक्त कर्मयोग का उदाहरण थी। उन्होने बहुत वर्षो तक बडी योग्यता से वकालत की। साथ-ही-साथ कई प्रकार के सार्वजनिक कार्यो मे योगदान दिया। अवकाश ग्रहण के बाद उन्होने रामायण, विनय-पत्रिका व गीता का बहुत गहन अध्ययन किया, यद्यपि उनकी प्रारम्भिक भूमिका उर्दू व फारसी की थी, हिन्दी व सस्कृत की नही। वकालत के दिनो मे भी एक पुराने व कर्मठ 'थियोसोफिस्ट' के नाते उनका धार्मिक व आध्यात्मिक अभ्यास निरन्तर चलता रहा। वह हमे सदा समझाते रहते थे कि योगियो को ढूंढने के लिए बनो मे, जंगलो में व तीर्थ-स्थानो में जाने की जरूरत नही है। हम तो गृहस्थ-जीवन में ही बहुत-से योगियों को सहज पा सकते है और उनके दर्शन कर सकते है। वह कहते थे :

"जो माता सुवह से रात तक अपने कुटुम्ब का पालन करती है, बच्चों की देखभाल करती है, अतिथियों की लगन से सेवा करती है, सबको खिलाकर अन्त में भोजन करती है, वह योगी नही है तो क्या है ? योगी वनने के लिए गेरुए कपडे पहनने की जरूरत नही होती।"

इटावा मे हमारे घर पर एक बूढी पनिहारन आती थी। उसकी कमर झुक गई थी और वह काफी कमजोर हो गई थी। किन्तु समय पर अपना काम करने आ जाती थी और वड़ी कुशलता व तत्परता से बर्तनों की सफाई करती थी। एक ऊचे पटे पर बैठकर वर्तन धोती थी वड़ी लगन से, मानो अपने सिहासन पर बैठी हो ! इस प्रकार के कर्मयोग में भी तो एक शान और इज्जत है न ? एक मिश्रानी आती थी, अधेड़ उम्र की, जिसे उसके पति ने छोड दिया था, क्योकि वह जन्म से वहरी थी। किन्तु वह भी अपने काम में वड़ी चुस्त थी, व्यवस्थित थी। इशारो से सब बातें समझती थी, कुछ पढी-लिखी भी थी। कितने भी मेहमानो का ज्यादा काम आ जाय, जैसा पिताजी की बीमारी के समय आ पड़ा, वह कभी परेशान नहीं होती, 'आह' नहीं करती, बल्कि खुश होती थी। यह कर्म-योग नही तो क्या है ?

किन्तु इस प्रकार के 'कर्मयोग' के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने असली स्वरूप को पहचानते हो, हमें आत्म-ज्ञान हो। 'गुरु नानक बिन आपा चीन्हें, मिटे न भ्रम की काई।' हमें यह निरन्तर ध्यान मे रखना चाहिए कि हम तो शुद्ध ब्रह्म है, 'न च भूत-संघः', या जैसा गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा :

ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
चेतन, अमल, सहज सुखराशी।

बीमारी की हालत मे ही पूज्य पिताजी ने एक पुराना संस्मरण सुनाया। जब वह मैनपुरी में वकालत करते थे तब हमारे मकान के पीछे ही एक क्लब था, जहा वकील-मुख्तयार वगैरह शाम को टेनिस खेलने आते थे। वहा चौधरी नाम का एक बुड्ढा नौकर था। बड़ा मेहनती व ईमानदार। उसकी चौधरानी हमारे घर पर कुछ काम-काज के लिए आती थी, अनाज आदि साफ करने। वह भी बडी ईमानदार थी। कभी एक पैसा भी इधर-उधर नही हुआ। एक बार चौधरी सख्त बीमार पड़ा। चौधरानी ने सिर्फ चार आने के तेल से उसके शरीर की मालिश करके ही कुछ हफ्तो मे उसे ठीक कर लिया।

एक दिन मेरी माताजी ने चौधरानी से पूछा, "तुम थोडे-से पैसो मे ही सन्तोष मानकर अपनी गुजर कैसे कर लेती हो?" उस चौधरानी ने बड़ी नम्रता से धीमे स्वर मे उत्तर दिया, "बहूजी, मैं ईश्वर को चीन्हती हू।" पिताजी यह पुरानी बात सुनाते हुए गद्‌गद् हो गये। कहने लगे, "श्रीमन्, ईश्वर को चीन्हे विना हम कर्मयोगी नही बन सकते और ईश्वर को चीन्हने का मतलब है अपनेको पहचानना, यह जान लेना कि हमारा असली रूप क्या है?"

भगवान रामचन्द्रजी ईश्वर की नवधा भक्ति का रहस्य समझाते हुए अन्त मे कहते है—

मम दरसन फल परम अनूपा।
जीव पाव निज सहज सरूपा॥

अपना सहज स्वरूप पा लेना ही आत्म-ज्ञान है और इसी के जरिये हम अपनी नित्य की दुनियादारी में भी योगी कहलाने योग्य बन सकते हैं।

पुराणो में उस गरीब पतिभक्त ब्राह्मणी की कथा मशहूर है, जिसने एक क्रोधी सन्यासी को नम्रता किन्तु दृढ़ता से उत्तर दे दिया था, "महाराज, मैं बगुला नही हूं, जो आपकी क्रोधभरी आंखों को देखकर जलकर गिर पड़ूं। जब मैं अपने पतिदेव की सेवा पूरी कर लूगी तभी आपको भिक्षा देने बाहर आ सकूगी।"

सत कबीर भी तो इसी प्रकार के महान् कर्मयोगी थे। जुलाहे का काम करते हुए भी उन्होंने 'सहज समाधि' द्वारा 'परम पद' प्राप्त किया .

सुख दुख से कोई परे परमपद,
तेहि पद रहा समाई ।

संत रैदास तो चमार का काम करते थे। दिन-भर बड़ी मेहनत से चमड़े का काम करते और अपनी रोजी कमाते, किंतु उनकी भक्ति बहुत ऊंचे दर्जे की थी :

प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी,
जाकी अँग अँग बास समानी !
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती,
जाकी ज्योति जरे दिन राती !

पिताजी ने इटावा की ही एक और घटना सुनाई। कुछ वर्ष पहले एक गरीब मोची चौराहे पर रोज शाम जूते दुरुस्त करने का काम करता था। जैसे ही उसकी चार आने की कमाई हो जाती, वह अपना सामान उठाकर चला जाता था। जब लोगों का ध्यान

उसकी ओर गया तो मालूम हुआ कि वह अधिकतर अपना समय एक छोटी-सी बद कोठरी मे भजन-पूजन में व्यतीत करता था। इससे लोगो की उसके प्रति बड़ी श्रद्धा हो गई। वे उसे शुरू मे ही आकर थोड़े-से काम के लिए चार आने दे देते थे। मोची चला जाता और अपनी कोठरी के दरवाजे बंद कर ध्यान मे मग्न हो जाता। एक दिन लोगो ने देखा कि वह मोची चौराहे पर आया ही नही। वे समझे कि शायद बीमार हो गया है। वे उसकी कोठरी की ओर गए, वहा भी वह नही मिला। लोगो को बडी चिंता हुई, किन्तु कई दिन तक उसका कोई पता न लगा। बाद मे किसीने कहा कि वह तो इटावा छोडकर किसी और जगह चला गया है, क्योकि भक्त लोग उसे घेरने लगे थे। मोची नही चाहता था कि उसकी साधना में किसी तरह की बाधा आवे। यह बात तो काफी पुरानी है। पिताजी ने कहा, "लेकिन अगर हम वारीकी से देखे तो आज भी इस तरह के कर्मयोगियों के दर्शन पा सकते है।"

हमारे ज़माने में राजनैतिक क्षेत्र में पण्डित जवाहरलालजी भी एक महान् कर्मयोगी थे। वे सुवह् से रात तक एक-एक मिनट देश की सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक अवस्था सुधारने के कामो में वडी लगन व कार्यकुशलता से लगे रहते थे। आजादी मिलने के वाद जव वे राष्ट्र के प्रधान मन्त्री वने तो वे सभी अफसरो से कहते थे :

"देरी के कारणो को जानने में मुझे कोई दिलचस्पी नही है। मै चाहता हू कि सभी काम फुर्ती व कुशलता से हों।"

और इस आदर्श को पूरा करने मे वे सवसे आगे रहते थे।

वे चाहते थे कि हमारा काम पूरी ईमानदारी व कुशलता से किया जाय, ढीलेपन व लापरवाही से नही । और अपनी जिन्दगी की आखिरी घडी तक उन्होंने स्वयं ऐसा ही किया। गीता के 'निष्काम-कर्म' में उन्हें पूरी श्रद्धा थी :

बुद्धि युक्तो जहातीह उभे सुकृत दुष्कृते।
तस्माद् योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।

: ९ :

'पर उपदेस कुशल बहुतेरे'

बाइबिल का वह प्रसग मशहूर है जिसमे ईसा ने भीड़ को डाटकर कहा था·

"जो स्वयं सोलह आना सदाचारी हो वही इस स्त्री पर पत्थर फेके।"

एक स्त्री के चरित्र पर दोष लगाकर लोग उसे बुरा-भला कह रहे थे। मसीह को देखकर वह स्त्री उनके समीप आई और शरण मांगने लगी। जब ईसा ने देखा कि उन लोगो में भी कोई चरित्रवान् नही है, तब उन्होने ऊपर लिखी चुनौती दी। कहने की आवश्यकता नही कि उस स्त्री पर पत्थर फेकने की किसीमें भी हिम्मत न हुई। सारी भीड आंख बचाकर धीरे-धीरे तीन-तेरह हो गई।

यह घटना लगभग दो हजार वर्ष पहले की है, किन्तु आज भी हमारा हाल करीब-करीब वैसा ही है। हमारे देश मे भ्रष्टाचार की बडे जोर-शोर से चर्चा चलती रहती है। हरेक व्यक्ति कहता है कि समाज व शासन में भ्रष्टाचार ने घर कर लिया है। हम अकसर सुनते है, "अरे साहब, सभी भ्रष्ट हो गये है, ऊपर से नीचे तक।" लेकिन मजे की बात यह है कि 'सब' में खुद को शामिल नही किया जाता है।

यह तो उन दस मूर्खों जैसी कहानी हुई जो तीर्थ-यात्रा पर जा रहे थे। एक नदी पार करने के बाद सब एक-दूसरे की गिनती करने लगे—"ओफ! हम तो नौ ही रह गये!" रोना-चिल्लाना शुरू हो गया। इतने में एक होशियार बटोही उधर से गुजरा। उसने रोने का कारण पूछा।

उत्तर मिला—"हम दस यात्री थे। अब नौ ही रह गए! एक शायद डूब गया!" बटोही ने गिनती की तो दस-के-दस मौजूद थे। पता चला कि वे मूर्ख अपने साथियों को तो गिन लेते थे, लेकिन अपने-आपको गिनना भूल जाते थे!

उन यात्रियों की बेवकूफी पर हँसने की जरूरत नही है। दुनिया में अधिकतर लोगों का लगभग वैसा ही हाल है। हम दूसरों की ओर उगली उठाते रहते है, अपनी ओर नही। दूसरो को उपदेश देने मे हम बहुत तत्पर रहते है, लेकिन 'कथनी' और 'करनी' में बहुत अन्तर है। इसीलिए तुलसीदास ने व्यग्यपूर्वक इशारा किया:

पर उपदेस कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते न घनेरे॥

× × ×

आज हमारे देश में अन्न की समस्या बड़ी कठिन व जटिल हो गई है। आबादी तो बहुत अनियंत्रित ढंग से बढती चली जाती है, लेकिन अन्न का उत्पादन कई कारणों से उस अनुपात में नही बढ पा रहा है। बेचारा किसान भरसक प्रयत्न करता है कि उसकी खेती की पैदावार पहले से अधिक हो। दिन-रात परिश्रम करता है। शीत, गर्मी, वर्षा का मुकाबला कर अपने खेत

में परिवार-सहित जुटा रहता है। लेकिन सरकार की ओर से जो सुविधाएं उसे समय पर मिलनी चाहिए वे नही मिल पाती। खेती के काम के लिए उसे तकावी वक्त पर नही मिलती। न अच्छा बीज मिल पाता है और न खाद। नहरो से समय पर सिंचाई के लिए पानी भी प्राप्त नही हो पाता है। कभी-कभी कुदरत भी धोखा दे देती है। कही अति वर्षा व बाढ़ और कही सूखा। बेचारा किसान करे तो क्या करे ?

किन्तु हमारे राजनैतिक नेतागण व सरकारी अफसर हमेशा किसानों को ही उपदेश देते रहते है—"भाइयो, खूब मेहनत कीजिये। परिश्रम के बिना देश की उन्नति नही हो सकेगी।"

मै तो इन भाषणो को सुनते-सुनते बिलकुल ऊब गया हू। गुस्सा भी आता है। जो किसान अथक परिश्रम करते ही रहते है, उन्हे हम सफेदपोश लोगो की ओर से सीख देना सचमुच हास्यास्पद है। यह मजाक अब बिलकुल बन्द हो जाना चाहिए।

देश में चारों ओर भ्रमण करने के बाद मेरा तो यह पक्का विश्वास है कि हमारा कृषक बहुत मेहनती व होशियार है। अगर उसे समय पर कर्ज, पानी, बीज व खाद की सहायता मिल जाय तो वह अपना उत्पादन बढाने में कोई कसर नही रखेगा। वह नए वैज्ञानिक ढग भी अपनाने को तैयार है, बशर्ते कि उन प्रयोगों के लाभ को वह अपनी आख से देख ले व अनुभव से समझ ले। भारत का काश्तकार दकियानूसी नही है। वह नवीन प्रयोग आसानी से अपने खेत पर करने को तत्पर नही होता, क्योकि बेचारा बेहद गरीब है और उसमे आएदिन सरकारी अफसरों

के भापणो के आधार पर प्रयोग करते रहते व अकसर नुकसान सहने की शक्ति नही है। यदि खेती का कोई नया तरीका उसको ठीक तौर से जंच जाय तो वह उसे देखने व समझने के लिए दूर-दूर से आने को तैयार है। इसीलिए अपने किसानों को 'दकियानूसी' व 'अनाड़ी' कहना उनके प्रति घोर अन्याय है।

× × ×

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी में एक बडी खूबी थी। वह जो कुछ कहते थे, उसका पहले स्वयं पालन करते थे। राजनैतिक क्षेत्र में उन्होने स्वराज्य-संग्राम में अपने परिवार के सभी सदस्यों को पहले शामिल किया; सामाजिक क्षेत्र में हरिजन-उद्धार व अस्पृश्यता-निवारण के लिए बापू ने अपने घर व आश्रम से आन्दोलनों की शुरूआत की। शिक्षण-सुधार के प्रयोगों को उन्होने अपने पुत्रों से प्रारम्भ किया और बाद में अन्य बालकों पर। प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी भोजन के प्रयोग भी वह पहले अपने शरीर पर ही करते रहते थे। एक दिन जब मै सेवाग्राम गया तो मालूम हुआ कि बापूजी की तबीयत ठीक नही है। पूछने पर पता चला कि पिछले दिन उन्होने कच्चे नारियलों की चटनी पीसकर खाई थी और उसके कारण उनके पेट मे तकलीफ हो गई। यह प्रयोग बापू ने एक बीमार बहन का इलाज करने की दृष्टि से किया था, लेकिन उस बहन पर कोई नया प्रयोग करने के पहले बापूजी ने अपने शरीर पर ही आजमाइश करना उचित समझा।

"बापूजी, भोजन-सम्बन्धी ऐसे प्रयोग आप स्वयं क्यों करते है ?" मैंने सहज भाव से पूछा।

"मै महात्मा हूं न !" बापू ने मुस्कराकर उत्तर दिया।

गाधीजी सचमुच 'महात्मा' इसीलिए थे कि वे दूसरो को सीख देने के पहले अपने आदर्शो का पालन स्वय अपने से ही शुरू करते थे।

सन् १९४६ में देश में अन्न का भयानक सकट था। अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार बन गई थी और देशरत्न डा० राजेन्द्र-प्रसाद केन्द्रीय खाद्य-मन्त्री थे। गाधीजी 'हरिजन' मे नियमित रूप से व्यावहारिक सूचनाए प्रकाशित करते थे कि देश में अधिक अन्न किस तरह उपजाया जा सकता है। उन्होंने अपने सेवा-ग्राम-आश्रम मे भी सभी कृषि-योग्य भूमि में अनाज-उत्पादन की योजना तैयार कर दी थी।

उनकी कुटीर के पास बा ने शोभा के लिए कुछ गुलाब के पौधे लगवा दिये थे, जिनमें उन दिनो फूल लग रहे थे। एक दिन शाम को बा घूमने के बाद बापू के पैर धो रही थी। जैसा हमेशा किया जाता था, पैर धोने के बाद बा ने बाल्टी का पानी नजदीक के गुलाब के पौधे में डाल दिया। यह देखकर बापू जरा गम्भीर होकर सोचने लगे। फिर धीरे-से बोले :

"श्रीमन, यह गुलाब के फूल देखने में अच्छे तो लगते है। बा ने खुद लगाये हैं। लेकिन आज की देश की हालत को देखते हुए वे फूल मुझे चुभते हैं। क्या इनकी जगह हमें गेहू के पौधे नही उगाने चाहिए?"

और दूसरे ही दिन उन क्यारियो में गेहू बो दिये गए। यह थी बापू की जीवन-पद्धति और काम करने का तरीका।

एक दिन महाराष्ट्र के विद्वान् पडित परचुरे शास्त्री सेवा-

ग्राम में आकर सड़क के किनारे पड़े थे। वह कुष्ट से बुरी तरह पीड़ित थे और अच्छे होने की सारी आशाए छोडकर बापू के पवित्र आश्रम में शरीर त्यागने की मनोकामना से आये थे। जव गांधीजी को यह जानकारी मिली तो वे फौरन उधर गये और परचुरे शास्त्री को खुद उठाकर आश्रम के अन्दर ले आये। दूसरे आश्रम-वासी कोढ़ की बीमारी से घबडाकर शास्त्रीजी की सेवा करने में बहुत सकोच करते थे। गांधीजी समझ गये, किन्तु उनसे कुछ नही कहा। दूसरे दिन से स्वयं कुष्ट के घाव धोना शुरू किया, परचुरेजी की काफी देर तक मालिश की। वह दृश्य देखते ही बनता था। अब तो उस प्रसंग की फोटो सभी महारोगी-निवारण संस्थाओं मे देखी जाती है। धीरे-धीरे आश्रम के अन्य कार्यकर्ताओ में भी कुछ हिम्मत आई और वे मालिश के काम मे बापू की मदद करने लगे। यह था गाधीजी का बड़प्पन। उनकी जिदगी सचमुच एक कठिन तपस्या थी।

× × ×

पंडित जवाहरलालजी का भी जीवन बड़ा कसा हुआ था। वे स्वयं अत्यन्त कार्यकुशल व चुस्त थे और इसीलिए दूसरों से अपेक्षा करते थे कि वे अपने सभी कार्यों में दक्ष हो, ढीले-ढाले व अस्त-व्यस्त नही। लेकिन यह आदेश देने के पहले उन्होंने खुद का जीवन इतना सुव्यवस्थित बना लिया था कि वह अपनी मेज के सारे कागजात खत्म किये बिना रात को सोते नहीं थे, चाहे कितनी ही देर हो जाय। अपने प्रयाण के पहले की रात को बारह बजे के लगभग सोते समय उन्होने अपने सेक्रेटरी से कहे

संतोषपूर्वक कहा था, "मैने अपनी सभी फाइले व कागज निपटा दिये है।"

कांग्रेस के महामंत्री और फिर योजना कमीशन के सदस्य के नाते मैंने पंडितजी से दस-बारह वर्षो तक काफी पत्र-व्यवहार किया। लेकिन मैंने सदा पाया कि वह अन्य कार्यो मे कितने भी व्यस्त क्यो न हों, उनका उत्तर दूसरे दिन सुबह जरूर मिल जाता था। जहातक मुझे जानकारी है दुनिया में और किसी राजनैतिक नेता की इतनी कुशल कार्य-प्रणाली नही रही है। जवाहरलालजी सचमुच एक महान् कर्मयोगी थे। उनके लिए 'आराम हराम' था।

आचार्य विनोबा भावे भी सर्वोदय कार्यकर्ताओ के सामने वही कार्यक्रम रखते है, जिन्हे वह पहले खुद कर दिखाते हैं। बहुत वर्षो तक उन्होने साबरमती व वर्धा आश्रमो मे खादी-सम्बन्धी प्रयोग किये और स्वय घंटो विभिन्न प्रकार के चर्खो पर कताई व करघो पर बुनाई की। बाद में जब पवनार-आश्रम में उन्होने काचन-मुक्ति का यज्ञ शुरू किया तब वह खुद अपने कधे पर कुदाली या फावडा लेकर आगे चलते थे और कुओ की घटो खुदाई करते थे। आज भी वह गावों में भूदान व ग्रामदान-यात्रा करते समय सबसे अधिक परिश्रम करते है। उनकी आन्तरिक भावना यही रहती है—"करेंगे या मरेंगे।"

× × ×

इस समय हमारे देश को कई तरह की कठिनाइयों व परेशानियो का सामना करना पड रहा है। हमारे समाज में भी काफी बुराइया व कमजोरिया आ गई है जिन्हे शीघ्र दूर करना

आवश्यक है। लेकिन यह काम दूसरों को उपदेश देते रहने से पूरा न हो सकेगा। अगर हम राष्ट्र को ऊंचा उठाना चाहते है तो हममें से प्रत्येक व्यक्ति को अधिक कार्यकुशल, ईमानदार व लगनशील बनना होगा। बूद-बूंद से ही घट भरता है। इसी प्रकार चरित्रवान् व्यक्तियों से ही अच्छा व प्रगतिशील राष्ट्र बन सकता है। अगर कमरे में बिजली चले जाने से अंधेरा हो गया है तो रोने-चिल्लाने से तो काम नही बनेगा। यदि हम एक छोटी मोमबत्ती या दीया भी जला देते है तो काम-चलाऊ रोशनी हो जाती है और हमारा ज़रूरी काम जारी रह सकता है।

इसीलिए गाधीजी हमेशा कहा करते थे—"ज्योति को अपने अन्दर की ओर डालो।" 'Turn the searchlight inwards'. दूसरों के दोष देखने के बजाय खुद को सुधारने की कोशिश करो। यही सही रास्ता है। यही कल्याण का मार्ग है। हमारे सन्तों ने ठीक ही कहा है—"आप भला सो जग भला।"

: १० :

'अहिंसा परमो धर्मः'

इस समय वियतनाम युद्ध के सिलसिले में लगभग सभी राष्ट्र बुलन्द आवाज से कह रहे है कि इस सघर्ष का हल युद्ध द्वारा कदापि नही निकल सकेगा। लड़ाई का निबटारा आपसी बात-चीत से ही होना सम्भव है। मानो भगवान बुद्ध के ही कई हजार वर्ष पूर्व उच्चारित शब्द ससार के वर्तमान राजनयिक क्षेत्रो में गूज रहे है :

नहि वेरेन वेरानि-सम्मन्तीघ कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनत्तनो॥

हमारी दृष्टि से वियतनाम-सघर्ष ने अब यह निश्चित रूप से साबित कर दिया है कि भविष्य में अमरीका जैसा अस्त्र-शस्त्र-सुसज्जित व अणु-शक्ति-युक्त बलवान राष्ट्र भी हिसक युद्ध के ज़रिये किसी जटिल राजनैतिक समस्या को हल करने में असमर्थ रहेगा। इसलिए हिसा का साधन त्यागने मे ही ससार का कल्याण है। 'शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व' का सिद्धान्त भी इसी निष्कर्ष का परिणाम है। 'जीओ और जीने दो' एक बहुत प्राचीन कथन है। लेकिन आज भी उसका उतना ही व्यावहारिक महत्व है, जैसा हजारो वर्ष पहले था और हमे यह भी जानकर शायद आश्चर्य होगा कि "अहिसा परमो धर्मः" का मूल-मन्त्र महाकाव्य

महाभारत के ऋषि ने ही प्रतिपादित किया था। कौरव-पांडव महायुद्ध की फलश्रुति अहिंसा ही है, हिसा की विजय नही। युद्ध में दोनों ओर विनाश-ही-विनाश हुआ और अन्त में विजय के पश्चात् पांडवों ने पापों के प्रायश्चित व अन्त करण की शुद्धि के लिए हिमालय-यात्रा की और प्रकृति की गोद में अर्पित हो गये। इस नजरिये से मैं तो महाभारत को सदा अहिसा का ही एक दिव्य पुराण मानता आया हू।

× × ×

भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम में भी गाधीजी ने हमें हिंसक प्रवृत्तियो से हमेशा रोका, क्योंकि वे जानते थे कि हिसा की प्रतिक्रिया सरकारी दमन होगा और उसमें हमारी आजादी नजदीक आने के वजाय दूर हो जायगी। जव चौरी-चौरा के हत्याकाण्ड की वजह से बापू ने १९२१ का असहयोग-आन्दोलन अचानक स्थगित कर दिया तव शुरू में नेताओं व आम जनता में काफी ग़लतफहमी हुई। लेकिन बाद में देश समझ गया कि अहिसक आन्दोलन को सफलतापूर्वक सचालित करने के लिए भी फौज की तरह कठोर अनुशासन की जरूरत होती है। उसके बिना अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

सन् १९६५ मे भारत-पाकिस्तान-युद्ध के अवसर पर भी भारत ने वड़े सयम से काम लिया। पाकिस्तान ने नागरिकों की वस्तियो पर वडी निर्दयता से वम-वर्षा की। किन्तु ऐसा होते हुए भी हिन्दुस्तान ने इस प्रकार का वदला नही लिया। अन्त में स्वर्गीय लालवहादुरजी शास्त्री ने 'ताशकन्द-घोषणा' पर पूरी ईमानदारी मे भारत की ओर से हस्ताक्षर किये। आज भी हिन्दु-

स्तान उस ऐतिहासिक घोषणा की भावना को कायम रखने की भरसक कोशिश कर रहा है और करता रहेगा। यह सब अहिंसा की परम्परा को जारी रखने का भगीरथ प्रयत्न ही कहा जायगा न ?

गांधीजी ने हमें बार-बार समझाया था कि अहिंसा का मतलब कायरता कदापि नहीं हो सकता। "अहिंसा कायरों का नहीं, वीरों का अस्त्र है।" बापू ने यहातक कह दिया था कि यदि हिंसा और कायरता के बीच चुनाव करना अनिवार्य हो जाय तो हमें हिंसा को चुनना चाहिए, कायरता नहीं। यह सर्व-विदित है कि जब १९४७ में पाकिस्तान ने काश्मीर-पर सशस्त्र हमला कर दिया और भारत सरकार व जनता घबड़ा गई तो गाधीजी ने फौजी युद्ध शुरू करने के लिए पं० जवाहरलालजी को अपनी अनुमति दे दी थी। सघर्ष टालने के लिए यथाशक्ति सभी प्रयत्न करने के बावजूद यदि किसी राष्ट्र को युद्ध करना ही पडे तो वह उचित होगा। शान्ति व अहिंसा का अर्थ अप-मान व अन्याय सहना कदापि नहीं हो सकता। गीता में भगवान ने दैवी सम्पदा का सबसे बड़ा गुण 'अभय' ही बतलाया है।

× × ×

श्री आनन्द हिंगोरानी द्वारा प्रकाशित 'बापू के आशीर्वाद' नामक डायरी में बापू ने २२ नवम्बर १९४४ को लिखा था :

"सत्य के दर्शन बगैर अहिंसा के हो ही नहीं सकते। इसी-लिए कहा है कि 'अहिंसा परमो धर्मः।'

इसका यह अभिप्राय हुआ कि अहिंसा पालन के लिए सत्य को साधना बिलकुल अनिवार्य है। जो व्यक्ति या राष्ट्र सत्य को ठुक-

राने को तैयार है वह अहिंसक व्यवहार का दावा कभी नही कर सकता। इसलिए हमारे ऋषियो ने अदम्य विश्वास के साथ घोषणा की—'सत्यमेव जयते नानृतम्।' यह सिद्धान्त हिंसक व अहिंसक दोनों ही प्रकार के संघर्षो के लिए लागू होता है। सत्य व अहिंसा एक ही आध्यात्मिक सिक्के के दो पहलू हैं, यह हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

और सत्य पर हिम्मत से डटे रहने के लिए 'आत्म-ज्ञान' जरूरी है। जो व्यक्ति अपने असली रूप को नही समझता और अपनी आत्मा को ही सभी स्थावर-जगम भूतों में विद्यमान नही देख सकता वह न सत्य का पालन कर सकता है और न अहिंसा का। आत्म-ज्ञानी ही 'स्थित-प्रज्ञ' बन सकता है, निष्काम-कर्म का तप करने योग्य हो सकता है। वही निर्भय, निर्वैर कहलाया जा सकता है और निरन्तर परोपकार के कार्यो में लगा रह सकता है।

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।

'जपुजी' के मंगलाचरण में भी गुरु नानक ने भगवान् को 'निरभउ निरवैरु' के नाम से ही पुकारा है।

गोस्वामी तुलसीदास ने इसी विचार को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है। यह दोहा पूज्य पिताजी हमें अक्सर सुनाया करते थे :

उमा जे राम चरन रत, विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहि जगत, केहि सन करहि विरोध॥

इसी प्रकार के 'समदर्शी' व्यक्ति सच्ची अहिंसा को सहज रूप से निभा सकते है और तभी विश्व-बन्धुत्व का वातावरण

स्थायी ढग से निर्मित किया जा सकता है।

× × ×

भूदान व ग्रामदान-आन्दोलन को मै आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रो में अहिसा का अपूर्व प्रयोग मानता आया हू, किन्तु इन दिनों आचार्य विनोबा सूक्ष्म चिन्तन की साधना में गम्भीरता-पूर्वक लगे हैं। कुछ समय पहले जब हम उनसे लक्ष्मीनारायण-पुरी (बिहार) मे मिले तो उन्होने समझाया·

"लोग अक्सर कर्म को ही अधिक महत्व देते है किन्तु मुझे स्पष्ट अनुभव मिल रहा है कि कर्म से अधिक शक्तिशाली है शब्द। शब्द से ज्यादा ताकतवर है चिन्तन और चिन्तन से भी अधिक अचिन्तन।"

इसलिए अब सत्य व अहिसा का दायरा केवल शारीरिक व स्थूल नही रह जाता, उनकी साधना सूक्ष्म से सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम की ओर ले जानी होगी।

यह स्पष्ट है कि शारीरिक हिसक कार्य से कही अधिक भयकर है क्रूर शब्द। कहावत है कि तलवार का घाव तो कुछ दिनो बाद भर जाता है, किन्तु कुशब्द का घाव नही भरता। इसीलिए ऋषि वाल्मीकि भगवान रामचन्द्र को ऐसे भक्तो के हृदय में बसने के लिए निवेदन करते है, जो

कहहिं सत्य प्रिय वचन बिचारी।
जागत सोवत सरन तुम्हारी॥

और बुरे शब्दों से भी भयानक है कुविचार व हिसापूर्ण चिन्तन। इसमें शक नही कि काम, क्रोध, विद्वेष, अहकार व पर-निन्दा के विचार स्थूल हिंसा से कही ज्यादा तीखे व गहरे होते

है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के 'चार्टर' में इसी गूढ सत्य को ध्यान में रखते हुए लिखा गया है कि "युद्ध के बीज तो मानवों के मस्तिष्कों में पैदा होते है। उन्हे वही से निर्मूल करना होगा।" इस दिशा मे 'यूनेस्को' संस्था ने काफी अच्छा रचनात्मक कार्य किया है।

अन्ततः सत्य व अहिसा की बुनियाद हमारे चरित्र व मनोदशा पर आधारित होती है। स्टेलिन की पुत्री स्वेतलाना ने अमरीका पहुचने पर एक मार्के की बात कही थी:

"मेरे लिए कोई न साम्यवादी है और न पूंजीवादी। मै तो सिर्फ अच्छे या बुरे मनुष्यों को पहचानती हूं।"

अगर हमारा मन व चरित्र अच्छा नही है तो न हम सच्चे कहलाने योग्य है और न अहिसावादी। सद्गुरु नानक का वचन है—'आई पथी सगल जमाती, मनि जीतै जगु जीतु।' भगवान बुद्ध के सम्पूर्ण उपदेशों का साराश भी यही है:

सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धानसासनं

अर्थात्, अपने चित्त की शुद्धि करो, यही बुद्ध का आदेश है और यही 'अहिंसा परमो धर्म.' आदर्श का असली निचोड़ है।

: ११ :

'सबसे ऊंची प्रेम सगाई'

सत सूरदास का 'सबसे ऊची प्रेम सगाई' नामक भजन गाधीजी को बहुत प्रिय था। सेवाग्राम-आश्रम में उनकी शाम की प्रार्थना के समय वह अक्सर मधुर स्वर में गाया जाता था। बापूजी हम सभीको हमेशा समझाया करते थे कि आपस में प्रेम-भाव से रहना चाहिए। हमें दूसरों के गुणो को देखना चाहिए, अवगुणो को नही। जब कभी आश्रमवासियो मे कुछ मनमुटाव हो जाता तो गाधीजी उसे दूर करने के लिए काफी समय भी देते थे, ताकि पारस्परिक द्वेष हटकर प्रेम व सद्भावना का वातावरण बना रहे। बापूजी अपने आश्रम को विनोद में 'शभू-मेला' कहा करते थे। जो व्यक्ति आश्रम में कुछ महीनो तक सबसे मिलजुलकर रह सके वह उनकी परीक्षा मे उत्तीर्ण माना जाता था।

भगवान बुद्ध भी अपने शिष्यो को आश्रम में प्रेमपूर्ण व्यवहार रखने का उपदेश देते रहते थे। उनके शिष्यो में अक्सर सघर्ष पैदा हो जाता था और भगवान के पास आकर एक-दूसरे की शिकायतें भी की जाती थी। प्रत्येक शिष्य चाहता था कि वह भगवान के अधिक नजदीक रहे, उठे और बैठे। एक दिन बुद्ध ने अपने सभी शिष्यो को बुलाकर कहा

"तुममें से जो मेरा चीवर (वस्त्र) पकड़कर और पैरों पर पैर रखकर चलता है वही मेरे नजदीक है, ऐसी बात नही है। वह मुझसे हजारों मील दूर हो सकता है। किन्तु जो सबसे प्रेम करता है और किसीका दिल नही दुखाता वह हजारों मील दूर रहते हुए भी मेरे बहुत निकट है!"

इस उपदेश का शिष्यो पर गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

जब ईसा मसीह से एक धनी नवयुवक ने आतुरता से पूछा कि उसके लिए प्रभु का क्या सदेश है, तो फौरन उत्तर मिला:

"तुम अपने पडोसी से अपनी तरह ही प्रेम करो।"

क्रास पर चढ़ाये जाने के कुछ दिन पूर्व ईशु ने अपने सभी शिष्यों के साथ 'अतिम भोजन' किया था और उन्हे यही नसीहत दी थी कि उनके जाने के बाद आपस में मिलकर प्रेम से भाई-भाई की तरह रहना।

आज आचार्य विनोबाजी "सत्य, प्रेम, करुणा" का सदेश गाव-गांव पैदल घूमकर फैला रहे हैं। वे अक्सर कहते हैं कि भूदान व ग्रामदान-आंदोलन का उद्देश्य सिर्फ जमीन एकत्र करना नही है। यह तो उसके यज्ञ का केवल बाहरी रूप है। असली ध्येय तो पारिवारिक भावना व पारस्परिक प्रेम बढाना है। उनका मूल मत्र है—"एक बनो! नेक बनो!"

पडित जवाहरलाल नेहरू का नाम भारत के इतिहास में अमर रहेगा। उन्होने देश व दुनिया के लिए कई बडे महत्व के कार्य किये, लेकिन वे चाहते थे कि उनकी यादगार में केवल इतना ही लिखा जाय:

"यह शख्स अपने देशवासियों को पूरे दिल से प्यार करता था और बदले में उसे भी जनता का भरपूर प्रेम मिला।"

इस प्रेम व मुहब्बत की वजह से लाखों-करोडो लोग उनके दर्शनो के लिए पागल की तरह दौड़ते थे और राष्ट्रीय आदोलन मे उनका पूरा साथ देते थे। उनके स्वर्गवास के बाद भी उनके रक्षा-कलश पर चढ़े हुए फूलों की एक-एक पखुडी को पाकर लोग अपनेको धन्य समझते थे।

सूरदासजी ने अपने "प्रेम सगाई" वाले भजन में इसी प्रकार के प्राचीन उदाहरण दिये है। प्रेम की खातिर ही भगवान कृष्ण ने दुर्योधन की शाही दावत को अस्वीकार कर विदुर के यहा साधारण भोजन करना पसन्द किया। मुहब्बत की वजह से ही युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में कृष्ण ने जूठन उठाने का काम स्वय लिया और फिर महायुद्ध मे अर्जुन के सारथी बनकर उनका रथ चलाया। भगवान रामचन्द्र ने प्रेम के वश होकर शबरी के झूठे फल स्वाद से खाये।

परमेश्वर के प्रति जो प्रेम होता है, उसे हम भक्ति कहते हैं। भगवान राम और कृष्ण ने बार-बार प्रतिज्ञापूर्ण घोषणा की है कि वे प्रेम के कारण अपने भक्तो के वश मे रहते है—"हम भक्तन के, भक्त हमारे।" गीता के अठारहवे अध्याय मे स्पष्ट कहा गया है कि मेरा भक्त जो मुझमें सदा तल्लीन रहता है वह मुझे अवश्य प्राप्त करता है:

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

इसी प्रकार की भावना भगवान रामचन्द्र द्वारा तुलसीदास-

कृत रामचरितमानस के अरण्यकाड में व्यक्त हुई है :

वचन कर्म मन मोरि गति
भजनु करहिं निःकाम
तिनके हृदय कमल महुं
करऊं सदा विश्राम ॥

निष्काम प्रेम व भक्ति का उदाहरण देते हुए मेरे पिताश्री अक्सर सुतीक्ष्ण मुनि का जिक्र करते थे, जो ऋषि अगस्त्य के खास शिष्य थे। जब भगवान राम ने अगस्त्य-आश्रम में पदार्पण किया तब सुतीक्ष्ण मुनि ने उनका बड़े भक्ति-भाव से मन-ही-मन स्वागत किया और रोमाचित होकर एक तरफ ध्यान में बैठ गये। उनकी पवित्र भक्ति पहचानकर रामचन्द्रजी उनके पास गये और कहा :

"मैं आपसे बहुत प्रसन्न हू। कुछ वरदान मागिये।" सुतीक्ष्णजी की भक्ति सर्वथा निष्काम थी। उनके मन में कभी वर मांगने का खयाल ही न आया था :

मुनि कह मैं वर कबहुं न जाँचा।
समुझि न परइ झूठ का साँचा ॥
तुम्हहिं नीक लागै रघुराई।
सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥

भगवान ने संतुष्ट होकर उन्हे यह वर दिया—

अबिरल भगति बिरति बिग्याना।
होहु सकल गुन-ग्यान निधाना ॥

लेकिन सुतीक्ष्ण मुनि की भक्ति तो इतनी निर्मल और काम-रहित थी कि उन्हे इस वरदान की भी जरूरत महसूस न हुई।

उन्होने अत में नम्रतापूर्वक यही कहा :

"प्रभु ! आपने जो वरदान दिया है, वह तो मैने पा लिया। अब मुझे जो अच्छा लगता है, वह दीजिये।"

उनकी यह प्रार्थना थी :

अनुज जानकी सहित प्रभु,
चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव,
बसहु सदा निःकाम।

अर्थात, हे प्रभो, छोटे भाई लक्ष्मण व सीताजी सहित धनुष-बाणधारी राम के रूप में आप निष्काम होकर मेरे हृदयरूपी आकाश में चन्द्रमा की भाति सदा निवास कीजिये।

निष्काम भक्ति की यह सचमुच पराकाष्ठा है। मुनि सुतीक्ष्ण स्वय तो वासना-रहित थे ही। उन्हे वरदान पाने की तनिक भी इच्छा नही थी। प्रभु को अपने हृदय में बसने के लिए निवेदन करते समय वह भगवान से भी आग्रह करते है कि वे निष्काम भावना से ही विद्यमान रहे। शुद्ध भक्ति के सिवा भगवान भी अपने भक्तो से कोई अन्य अपेक्षा न रखे।

और सच तो यह है कि "प्रेम सगाई" ऊची तभी कही जा सकती है जब वह स्वार्थ-रहित हो, निष्प्रयोजन हो, अलिप्त हो। यदि उस प्रेम में खुदगरजी है, वासना और काम-भावना है तो वह हमें भक्ति की ओर नही, बल्कि मोह और ममता की तरफ खीच ले जायगी।

ईश्वर-भक्ति का यह अर्थ नही हो सकता कि हम वनो में जाकर एकात में भगवान का भजन करे और अपने कुटुम्बियों,

पड़ोसियों व देशवासियों को भूल जायं। हमारे सभी ऋषियों-मुनियों ने उपदेश दिया है कि नर की सेवा ही "नारायण" की सच्ची भक्ति है। अगर हम मनुष्य-मात्र से मुह मोड़कर परमेश्वर को ढूढने जायंगे तो हमें मुक्ति के दर्शन न मिल सकेंगे।

जब सन् १९४९ में हमने गांधी-विचार-प्रचार के लिए विश्व-भ्रमण किया था तब न्यूयार्क के पास प्रिंसटन यूनीवर्सिटी में वर्तमान युग के प्रख्यात वैज्ञानिक डा० एलबर्ट आइन्सटाइन से भी मिलने का अवसर मिला। वह एक बहुत साधारण मकान में निवास करते थे और उनका रहन-सहन बड़ा सरल व सादा था। गांधीजी के संबध मे उन्होने कई बड़े मर्मस्पर्शी उद्‌गार व्यक्त किये। अंत में जब मदालसाजी ने अपने ऑटोग्राफ एलबम में उनसे कुछ संदेश लिखने के लिए निवेदन किया तो डा० आइ-न्सटाइन ने एक बड़ा गहरा विचार अपने हाथ से अंकित किया :

Nothing is more important to man than man.

अर्थात्, "मनुष्य के लिए मनुष्य से बढकर महत्व की और कोई वस्तु नही है।"

वैसे तो इस तरह के विचार कई कवियो ने विभिन्न भाषाओं में लिखे है, किन्तु एक महान वैज्ञानिक की लेखनी से मानवता के प्रति इतना महत्व प्रकट होना विशेष बात है। हमने उस "एलबम" को बडी सार-सभाल से अपने पास रख छोड़ा है। उसमें और भी कई महानुभावो के संदेश व विचार लिखे हैं। लेकिन डा० आइन्सटाइन की इस एक पंक्ति के कारण वह हमारे लिए अमूल्य धरोहर बन गया है।

मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि यदि हम "मानवता" के

आदर्श को ढग से निभा सके तो दुनिया की बहुत-सी बुराइया व परेशानिया अपने-आप दूर हो सकती है और हम एक सुखी व सात्विक समाज की स्थापना कर सकेंगे। धर्म व ईश्वर के नाम पर ससार में बहुत-से अत्याचार व अन्याय किये गए है, क्योकि भगवान की खोज में हमने मानव को हीन समझा और उसे अपमानित किया। जब मै किसी मदिर में जाता हूं तो इष्ट-देव की मूर्ति के दर्शन तो बाद मे करता हू, पहले भक्तों के भावों को देखकर आनदविभोर हो जाता हू। इसी भावना को मैने एक दोहे में व्यक्त किया है .

है आसान देव बन जाना,
बड़ा कठिन बनना इन्सान;
पूजा जाना सदा सुलभ है,
पूजा करना कला महान!

एक दूसरी कविता में ये पक्तियां लिखी गई है .

प्रेमपूर्ण पूजन से तेरे
पावन हो जाते भगवान!
कितना उदार! कितना महान।
जय! जय! जय! तेरी इन्सान!

लेकिन हम मानव को "महान" तभी कह सकते है जब उसका दिल व दिमाग बुलन्द हो, छोटा व सकुचित न हो, और मनुष्य का हृदय व्यापक तभी हो सकता है जब वह राग व द्वेप से परे हो, उसमें समता की भावना हो और वह सभी जीवो में एक ही ब्रह्म की ज्योति का प्रकाश देख सके। अंत में मानव ही ब्रह्म बन जाता है। "अह ब्रह्मास्मि!" "प्रेम सगाई" की यही फलश्रुति है।

: १२ :

'वड़े भाग मानुष तन पावा'

उस दिन जब हम श्री आनन्दमयी मा से हरिद्वार में मिले तो उन्होंने वडे प्रेम से समझाया कि मनुष्य को अपना शरीर, मन व वुद्धि स्वच्छ व शुद्ध बनाने का निरंतर प्रयत्न करना चाहिए, जिसको भगवान् का जो नाम प्रिय हो वही मन में गुन-गुनाते रहना चाहिए और फिर धीरे-से वोली, "देखो भाई, यह मनुष्य-शरीर वड़े भाग्य से ही मिलता है। आध्यात्मिक विकास के लिए उसका पूरा लाभ उठा लेना चाहिए न ?"

श्री मां के ये पावन वचन सुनकर मुझे अनायास भगवान् राम के उन शब्दो का स्मरण हो आया, जो उन्होने अयोध्या-वासी पुरजनो को कहे थे ·

वड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सव ग्रन्थनि गावा ॥

भगवान् ने मानव-शरीर को "साधन, धाम, मोच्छ कर द्वारा" भी वताया। जो इसे पाकर भी परलोक नही सम्हाल लेता, वह रोता व पछताता है।

तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' में तो वारंवार यही प्रार्थना की है कि उनका मनुष्य-जन्म अकारथ न हो और राम-भजन द्वारा वह मुक्ति प्राप्त कर सके :

हरि ! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों !
साधन, धाम बिबुध-दुरलभ तनु, मोहिं कृपा कर दीन्हो।
विषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुं पल एक।
ताते सहौं बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ॥

उसी प्रकार सूरदासजी ने भी यह अमर गीत गाया है :

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो निमकहरामी ॥

× × ×

चौरासी लाख योनियो में मानव-योनि सर्वोत्तम मानी जाती है। आधुनिक विज्ञान के विकास-सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य-शरीर सब योनियो के अन्त में प्राप्त होता है और एक बार मानव-योनि मे जन्म लेने के बाद मनुष्य फिर पशु-पक्षी की योनियो में वापस नही जाता। हिन्दू-धर्म में इसके विपरीत कुछ धारणाए है। महात्माओ के श्राप से काकभुशुन्डि की तरह कई साधु-सन्तो को भी पशु-पक्षियों की काया अपनानी पड़ी है। जो भी हो, मनुष्य-शरीर सबसे भाग्यवान् माना गया है और इसका कारण भी जाहिर है। आहार, निद्रा व मैथुन तो सभी योनियो में समान है, लेकिन भगवान् ने मनुष्य को बुद्धि व विवेक की शक्तिया भी प्रदान की है। इन्हीके माध्यम से वह अपने "सहज स्वरूप" को पहचानकर ब्रह्म मे लीन हो सकता है और जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है। हमारे उपनिपदों में शरीर को रथ कहा है, इन्द्रियो को घोडे, मन को बागडोर और बुद्धि को सारथी

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
वुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥

तप के संयम द्वारा मनुष्य अपनी इद्रियो व मन को वश में कर सकता है और इस प्रकार आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर होता है। जप-तप के पवित्र साधन अन्य योनियो को उपलब्ध नही है। इसीलिए मानव-शरीर दुर्लभ माना गया है।

यह तो सही है कि "मानुप तन" वड़े भाग्य से ही प्राप्त होता है, लेकिन हमारा भाग्य तभी सार्थक हो सकता है जब हम उस शरीर का ठीक उपयोग करे। इस दृष्टि से वह स्वस्थ व पवित्र रहना चाहिए। मेरे श्रद्धेय पिताजी हमें समझाया करते थे कि हमारा शरीर अन्तर-आत्मा का सुन्दर मन्दिर है। उसे वहुत साफ व पवित्र रखना चाहिए। स्थूल शरीर के अलावा, हमारे भाव व विचारों के शरीर भी स्वच्छ रहने चाहिए, ताकि आत्मा का प्रकाश ससार में चमक सके। यह तभी मुमकिन हो सकता है जव हमारे दैनिक जीवन में सयम हो, विवेक हो, तपस्या हो!

जिस तरह हमारी शारीरिक वीमारियों का असर मन पर पड़े विना नहीं रहता, उसी तरह हमारे मन व भावों का प्रभाव भी शरीर पर पड़ता है। इसीलिए गांधीजी कई प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए "रामनाम" पर वहुत ज़ोर देते थे। तुलसीदासजी ने रामायण के उत्तरकांड में 'मानस' रोगों का वड़ा मार्मिक वर्णन किया है। उन्होंने 'मोह' को सभी मानसिक व्याधियों की जड़ वतलाया है -

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥

यह सभी मानस ताप रामकृपा से दूर हो सकते है। किन्तु इस भगवद् कृपा के सुपात्र बनने के लिए हमारे जीवन में संयम चाहिए, इद्रियो पर अनुशासन चाहिए। यह विचार केवल धार्मिक व आध्यात्मिक नही है। कौटिल्य "अर्थशास्त्र" मे चाणक्य नीति के अनुसार भी व्यसनो को त्याज्य माना गया है। जो व्यक्ति उनमें फस जाता है वह सफलता प्राप्त नही कर सकता :

न व्यसनं परस्य कार्यावाप्तिः
तपस्सार इन्द्रिय निग्रहः

यह इन्द्रिय-सयम शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना जाना चाहिए।

यदि हमारा स्थूल शरीर ही स्वस्थ व कार्यशील नही है, तो फिर अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष-रूपी चारो ध्येय प्राप्त नही हो सकते। आयुर्वेद तत्व के वैद्य-शिरोमणि धन्वन्तरि का कथन है·

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूल कारणम्।

गाधीजी भी राष्ट्रीय व वैयक्तिक जीवन में आरोग्य पर बहुत जोर देते थे। जब वे अगस्त १९४२ की "भारत छोड़ो" क्रान्ति में आगाखा-महल में नजबन्द थे तब उन्होने राजनीति-सम्बन्धी कोई पुस्तक नही लिखी। लेकिन उस गम्भीर वातावरण में भी उन्होंने जेल में "आरोग्य की कुजी" नामक पुस्तिका लिख डालना महत्वपूर्ण समझा। यह सचमुच कितनी उल्लेख-

नीय वात है। इस किताव में वापू ने प्राकृतिक चिकित्सा पर बहुत वल दिया है और शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक पवित्रता का महत्व समझाया है।

इन दिनों तो "ऐलोपैथी" का वड़ा शोर-गुल है। जरा-सी कोई बीमारी हुई कि लीजिये "इन्जेक्शन" और तेज "एन्टी-बायोटिक" ओषधिया। इन दवाइयों से बीमारी भले ही कुछ समय के लिए दव जाय, लेकिन शरीर तो विलकुल जर्जर व घायल हो जाता है। अकसर कई तरह की नई तकलीफे खडी हो जाती हैं। हमारा अनुभव तो यही है कि आहार-क्रम वद-लने व कभी-कभी उपवास करने से बहुत-सी बीमारियां दूर हो सकती हैं। जरूरत ही पडे तो कुछ हलकी "बायोकैमिक" या होमियोपेथिक दवाइया बड़ी कारगर सावित होती हैं। आयुर्वेद-पद्धति ही हमारे देश के लिए अधिक अनुकूल है। खास तौर पर जडी-बूटी आदि। किन्तु जैसा विनोबाजी अकसर कहा करते हैं, सबसे अच्छी "पैथी" तो "सिम्पैथी" (सहानुभूति) ही है और उसके साथ प्राकृतिक उपचार, जल, मिट्टी, सूर्य की किरणें, वायु व आहार-शुद्धि के आधार पर।

× × ×

आहार-शुद्धि का हमारे जीवन मे विशेष महत्व समझना चाहिए। मानव-काया को शुद्ध व सुन्दर वनाए रखने में हमारा दैनिक भोजन सात्विक होना अत्यन्त आवश्यक है। जैसा हमारा आहार होगा वैसा ही हमारा स्थूल शरीर वनेगा। "चाणक्य-नीति" में भी साफ शब्दो में कहा गया है :

यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा।

लेकिन आजकल तो मास व मदिरा का प्रचार बडी तेजी से होता चला जा रहा है। ये व्यसन स्त्रियो व नवयुवकों में भी फैल रहे है, यह विशेष चिंता की बात है। राजनयिक जीवन में तो शराब पानी की तरह बहाई जाती है। मैंने अच्छे-अच्छे अफसरों को नशे में चूर होकर बकवास करते देखा है, भारत में और नेपाल में भी। किन्तु मैंने हिम्मत कर भारतीय राजदूत-निवास में तो मदिरा को जरा भी स्थान नही दिया। कुल मिलाकर इसका परिणाम हितकर ही रहा। हम अपने यहा शुद्ध आहार व पेयो की व्यवस्था रखते थे और इसके फलस्वरूप कई स्थानिक सज्जनो में शाकाहार व मदिरा-निषेध के प्रति विश्वास बढा। हम अपनी जीवन-पद्धति में दृढ रहे तो जनता भी हमारा आदर करती है। हम तो विश्व-भ्रमण भी कर चुके है। सभी देशो में हमें शुद्ध आहार प्राप्त करने मे किसी प्रकार की कठिनाई नही हुई।

यूरोप के एक प्रख्यात डाक्टर ने यह भी कहा है कि आजकल कई प्रकार की केन्सर आदि जैसी गम्भीर बीमारिया शराब व सिगरेट के व्यसनो की वजह से होती है। सोवियत यूनियन जैसे राष्ट्र में इन दिनों 'धूम्रपान' के विरुद्ध जोरदार जन-आन्दोलन चलाया जा रहा है। शराब की बढती हुई मात्रा के कारण भी पश्चिम के कई देश परेशान है और उपाय ढूढ रहे है कि यह व्यसन किस तरह नियत्रण मे लाया जाय। इस सम्बन्ध में एक जापानी कहावत बड़ी दिलचस्प है। "पहले मनुष्य शराब को पीता है, फिर शराब शराब को पीती है, और अन्त मे शराब आदमी को पीती है।" दुर्व्यसनों का असर

यही हाल होता है। जैसे अग्नि में घी डालने से आग अधिक भड़कती है, वैसे ही हमारी इन्द्रियों की वासना तृप्त करने के प्रयत्नों से उनकी भोग-लालसा अधिक बढती जाती है।" "मनुस्मृति" मे इस विचार को वडे अच्छे ढग से व्यक्त किया गया है :

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥

अर्थात्, व्यसन और मृत्यु इन दोनों में से व्यसन अधिक कष्टकारक है, क्योकि व्यसनी मनुष्य नीचे-ही-नीचे गिरता जाता है, जवकि व्यसन-रहित मनुष्य स्वर्ग में ऊची तरफ जाता है।

अकसर लोग कहते है, "ठीक है, हम भी शराव व सिगरेट पीने को बुरा समझते है। किन्तु आदत पड़ गई है। धीरे-धीरे छोडने की कोशिश कर रहे है।" अनुभवी डाक्टरों का कथन है कि इन व्यसनों को धीरे-धीरे नही छोड़ा जा सकता। अपनी सकल्प-शक्ति दृढ वनाकर उन्हे एकदम त्याग देना चाहिए। इसमें काफी मानसिक व शारीरिक कष्ट तो होता है, लेकिन सफलता भी मिल जाती है।

हाल ही में एक मशहूर डाक्टर ने और वड़े मार्के की वात कही है : "ससार में भोजन-सामग्री की कमी के वावजूद कम खाने के वनिस्वत अधिक खाने से ज्यादा लोग मरते है।" यह सही है कि दुनिया में इस समय काफी भुखमरी है, खासतौर पर एशिया व अफ्रीका के देशो मे। लेकिन फिर भी अधिक खाने-पीने से जो काल-ग्रस्त होते है उनकी सख्या अधिक है। कितना विचारणीय सत्य है यह ! शहरों में रहनेवाले धनी वर्गों को तो इस वात पर वड़ी गहराई से सोच-विचार करना चाहिए

न ? इससे उनके शरीर का भी भला होगा और समाज व देश का भी। बिना भूख के खाते रहना सचमुच अपने शरीर के प्रति अत्याचार ही है।

सभी धर्मो में नियमित उपवास करने की प्रथा रही है। हिन्दुओं मे एकादशी व अन्य त्योहारो के दिन फलाहार का आम रिवाज रहा है। इस्लाम मे "रमजान" आदि की प्रथा अब भी काफी प्रचलित है। इसी तरह अन्य मजहबो में भी। स्वर्गीय लालबहादुरजी शास्त्री ने भारत-वासियो से अपील की थी कि प्रत्येक सोमवार को शाम का भोजन बन्द रखा जाय। मै तो इसी क्रम को काफी समय से जारी रख रहा हू। अन्य बातों के अलावा इसमें हमारे स्वास्थ्य को काफी फायदा पहुचा है।

जब हम सन् १९४२ के आन्दोलन में जबलपुर-जेल में थे तो हमारे कई मित्र कहा करते थे—"कम खाना, गम खाना, तब कटे जेलखाना।" मेरे ख्याल से यह सिद्धान्त जेल के बाहर हमारे सामान्य जीवन में भी अच्छी तरह लागू किया जा सकता है।

भोजन के अलावा हमारा स्वास्थ्य कपडो व पोशाक पर भी काफी निर्भर रहता है। इन दिनो फैशन के नाम पर न जाने क्या रिवाजें पड गई है। भारत जैसे गरम देश मे कोट-पतलून, टाई और अब तो "ड्रेन-पाइप" जैसी सिकुडी पोशाक सचमुच भयकर ही है। किन्तु हमारे नवयुवक व युवतियां तो उनकी शिकार बनती जा रही है। नेपाल में भी विद्यार्थियों का यही हाल है। स्त्रियो में गहनों का फैशन कुछ कम हो गया था।

किन्तु अब फिर ज़ोर पकड़ता जा रहा है। गहना होना जरूर चाहिए, भले वह नकली हो! किन्तु यदि मानव-शरीर की सुन्दरता श्राभूषणों पर आधारित होती तो ब्रह्माजी इसका प्रवन्ध जन्म से ही कर सकते थे न ?

वास्तव में हमारे शरीर की सच्ची सुन्दरता सादगी में है—शुद्ध व सादा भोजन व स्वच्छ-सादा पोशाक ! इसी दृष्टि से गाधीजी ने भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम के समय खादी पर इतना ज़ोर दिया था। खादी में स्वार्थ भी है और परमार्थ भी। हमें शुद्ध व गरीवों द्वारा कता-बुना पवित्र वस्त्र पहनने को मिल जाता है और उसके जरिए लाखो वेरोजगार स्त्री-पुरुषों को कुछ कमाई का जरिया भी। खादी की कीमत की नव्वे फीसदी रकम गरीवो को रोजी के रूप में बंट जाती है, जवकि मिल के कपड़ों में केवल दस प्रतिशत रकम मजदूरों को प्राप्त होती है। इस ख्याल से खादी पहनना एक प्रकार का 'गुप्त दान-महा कल्याण' है। इससे उसकी सादगी-भरी सुन्दरता और भी वढ जाती है। और अव तो खादी के वस्त्रों में विविधता व वारीकी इतनी लाई जा सकी है कि मिल के वस्त्रों की अपेक्षा वह खूवसूरती में भी किसी कदर कम नहीं है।

सच वात तो यह है कि असली सौन्दर्य हमारे स्वास्थ्य में ही निहित है। अगर हमारा शरीर तन्दुरुस्त है तो वह सादे कपड़ों में भी सुन्दर दीखेगा। लेकिन अगर हम रोगी व कमज़ोर है तो फैशनभरी पोशाक पहनने पर भी हमारे शरीर की रौनक नही खिलेगी।

अन्तत. किसी व्यक्ति की सच्ची सुन्दरता उसके चरित्र पर

निर्भर करती है। एक कहावत है—"खूबसूरत वह है जो खूबसूरत काम करता है।" जिसका दिल गरीबों के प्रति प्रेम व सहानुभूति से भरा है और जो दिन-रात जनता-जनार्दन की भलाई व उन्नति के कार्यो में तल्लीन रहता है उसके चेहरे की चमक में एक अद्वितीय आकर्षण झलकता है, चाहे उसका रंग व शक्ल-सूरत बिलकुल ही साधारण क्यों न हो।

बुद्धि व विवेक गुणो के साथ-साथ मनुष्य एक सामाजिक प्राणी भी है। उसका असली व्यक्तित्व पहाड़ो की गुफा में नही, बल्कि समाज के सेवा-कार्य में खिलता है। कविवर तुलसीदास ने भी यही श्रद्धा व्यक्त की है :

परहित बस जिनके मन मांही।
तिन्ह कहं जग दुर्लभ कछु नाही॥

इस समय ससार की स्थिति सतोपजनक नही है। विभिन्न राष्ट्रो में आपसी मित्रता तथा बन्धुत्व की काफी कमी है। देशो की आतरिक अवस्था भी चिन्तनीय है। भाषा, रग, धर्म व क्षेत्रों के आधार पर वैमनस्य व कटुता है। मानव-शरीर पाने का भाग्य तभी सार्थक माना जायगा जब हम "वसुधैव कुटुम्वकम्" की भावना से ओत-प्रोत हों और मनुष्य एक-दूसरे का भक्षक नही, किन्तु रक्षक वने। हमारे वेदकालीन ऋषियो की यही प्रार्थना थी .

पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः।

: १३ :

'ॐ सह नाववतु'

हम जानते है कि गांधीजी-सम्बन्धी सभी आश्रमों व रचनात्मक संस्थाओं में सामूहिक भोजन के समय नियमित रूप से यह प्रार्थना की जाती थी :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं
करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहैः।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

यह प्रार्थना कठोपनिषद का शान्ति-पाठ या 'बीज-मन्त्र' है। सामान्यरूप से तो गुरु-शिष्य के पारस्परिक सह-जीवन की दृष्टि से इस प्रार्थना का उपयोग शिक्षण संस्थाओं में किया जाता रहा है। लेकिन गांधीजी ने उसका व्यापक प्रचलन किया सामूहिक भावना व सह-कार्य की शक्ति को बढ़ावा देने के ख्याल से। "हे परमात्मन! आप हमारी सब प्रकार से रक्षा करें; हमारा सामूहिक पालन-पोषण करे; हम साथ-साथ सब प्रकार से बल प्राप्त करे, हमारा अध्ययन तेजपूर्ण हो। हममें परस्पर कभी द्वेष न हो।"

राष्ट्रपिता गांधी ने भारत को किस तरह आज़ाद किया? उनके पास अस्त्र-शस्त्र नहीं थे, हिंसात्मक संगठन नहीं था। उन्होंने अपने त्याग व सेवा-भावना से देश में सामूहिक शक्ति

का निर्माण किया, जनता में सहजीवन (टीम स्प्रिट) की भावना जाग्रत की और सर्वसाधारण नागरिक को निर्भय बनाकर सत्याग्रह के लिए प्रोत्साहित किया। इसी सघ-शक्ति ने अन्त में 'भारत छोडो' आन्दोलन को जन्म दिया और अग्रेजी सत्ता को देश से चले जाने पर मजबूर किया।

फिर भी बापू को हमारे सह-जीवन की एकता से पूरा सन्तोष नही था। उस समय भी काग्रेसजनों में पारस्परिक राग-द्वेष था उन्होने 'गाधी सेवा सघ' जैसी सस्था को भी आपसी सघर्ष के कारण विसर्जित कर दिया था। अपने स्वर्गारोहण के कुछ दिन पहले ही गाधीजी ने काग्रेस को विगठित कर उसे 'लोक-सेवक सघ' में परिवर्तित करने की सलाह दी थी। किन्तु वैसा हो ही नही सका, और आज उसका परिणाम प्रत्यक्ष देख रहे है। पारस्परिक सह-कार्य व सद्भावना के स्थान पर काग्रेस-जनो में आपसी विद्वेष की सीमाए नही रही है। वे विरोधी दलो से मिलकर काम कर सकते है, किन्तु आपस में प्रेमभाव पुन नही जगा सकते। 'अपोजीशन' में बैठने के लिए भी एक राय हो सकती, उसमे भी कटुतापूर्ण होड हो रही है।

'मा विद्विषावहै।' यही सचमुच किसी भी समाज व राष्ट्र का मूल-मन्त्र होना चाहिए। इसके विना हमारा कल्याण नही। इसीलिए हमारे ऋषियो ने बार-वार ऊचे स्वर से सवको समझाया—'आपस में प्रेम करो, द्वेष कभी नही।' गाधीजी ने इसी मन्त्र को अपने सार्वजनिक जीवन का आधार वनाया और कार्य-कर्ताओ मे कुछ कमजोरियो के रहते हुए भी उसीके वल पर भारत को विदेशी राज्य से मुक्त कराने में सफल हुए। आज

फिर वर्तमान अन्धकार को दूर करने के लिए और देश के निर्माण के लिए सामूहिक शक्ति जगाने के हेतु हमें उसी 'बीज मन्त्र' का सहारा लेना नितान्त आवश्यक है। दूसरा कोई इलाज नही है।

× × ×

किन्तु इस विषय में हमें हताश नहीं हो जाना चाहिए। भगवान् बुद्ध ने ससार को एक नई रोशनी प्रदान की और 'मध्यम-मार्ग' की दीक्षा दी। किन्तु उनके जीवनकाल में भी शिष्यों के बीच प्रेम-भाव की काफी कमी थी। वे अक्सर आपसी झगड़ों को लेकर भगवान् के पास जाते थे। भगवान् उन्हें प्रेम से समझाते-बुझाते रहते थे और 'संघ-शक्ति' के महत्व पर निरन्तर जोर देते थे। उनके परिनिर्वाण के बाद शिष्यों ने उनकी विचार-धारा फैलाने का भरसक प्रयत्न किया और कुछ सदियों बाद सम्राट् अशोक उनका दिव्य सन्देश सुदूर देशो में भी फैलाने में सफल हुए।

ईसा मसीह के शिष्यो का हाल भी अच्छा नही था। 'बाइबिल' की घटनाए पढकर आश्चर्य व दु:ख होता है। जब यहूदियों द्वारा ईसा को मारने का षडयन्त्र रचा जा रहा था, उनके शिष्यों में समुचित आपसी प्रेम नही था। आखिर उन्हींमें से एक ने ईसा को धन के लालच में दगा देकर शत्रुओ के हाथ पकड़वा दिया। पीटर जैसे आत्मीय शिष्य ने भी कठिन समय में अपने स्वामी को पहचानने से इन्कार कर दिया। इसीलिए ईसा ने अपने 'लास्ट सपर' के समय सभी शिष्यों को सम्बोधित कर उपदेश दिया था.

'आपस में प्रेम करो। जिस प्रकार मै तुमसे प्रेम करता हू, उसी प्रकार तुम एक-दूसरे से मुहब्बत करते रहो।'

ईसा मसीह के क्रॉस पर चढाये जाने के बाद उनके शिष्यों ने असख्य यातनाए झेलकर भी अपने स्वामी का सदेश दुनिया के कोने-कोने मे फैलाने की कोशिश की और अभी भी लगन से कर रहे है।

आज काग्रेस की हालत सचमुच वहुत नाजुक है। उसकी कमजोरी के कारण देश की राजनैतिक अवस्था भी काफी चिन्ताजनक वन गई है। कागेस की हार के कई कारण वतलाये जाते हैं। लेकिन मेरे ख्याल से सवसे मुख्य कारण है, आपसी फूट व विद्वेष। मुझे भी छ वर्ष लगातार उसके महामन्त्री के नाते काग्रेस की सेवा करने का अवसर मिला था। यदि आज मुझसे पूछा जाय कि काग्रेस को फिर किस प्रकार मजवूत वनाया जा सकता है तो मेरा उत्तर सक्षिप्त किन्तु विल्कुल स्पष्ट होगा—"काग्रेसजन फिर देश की सेवा के लिए आपस में प्रेम करना सीखे।"

× × ×

जव किसी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के सामने कोई ऐसा विशेष ध्येय नही रह जाता, जिसकी प्राप्ति के लिए वह मर-मिटने को तैयार हो तव वह कमजोर व ढीला पड जाता है और आपसी एकता व प्रेम की क्षति होने लगती है। स्वतन्त्रता-सग्राम के समय प्रत्येक काग्रेसजन के सम्मुख स्वराज्य-प्राप्ति का एक-मात्र 'मिशन' था, जिसे पाने के लिए वह अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की तैयारी खुशी से रखता था। उन्ही दिनो महान् नेताओं

का अविर्भाव हुआ। किन्तु आजादी प्राप्त होने के बाद कांग्रेसजन के सामने उस तरह का कोई विशेष उद्देश्य नहीं रह गया, सिवाय मिनिस्टर बनने की कोशिश करना। इसीलिए आज वह मन्त्री-पद पाने के हेतु सबकुछ करने को उद्यत है। दूसरे राजनैतिक दलों के सदस्यों के लिए कांग्रेस को सत्ता-पद से किसी भी तरह हटाने का एक प्रमुख ध्येय रहा है और उसमें उन्हे काफी हद तक सफलता भी मिली है। वे आपस में एक 'न्यूनतम प्रोग्राम' के आधार पर मिलकर चल रहे है। किन्तु यदि उन्होने भी 'मिनिस्ट्री' को ही अधिक महत्व दिया और कोई दूसरा बड़ा 'मिशन' उनके सम्मुख न रहा तो कुछ समय बाद उनका भी कांग्रेस जैसा ही हाल हो जायगा। यह समझने के लिए किसी ज्योतिषी की 'भविष्य-वाणी' की आवश्यकता नही है।

कुछ दलों ने 'हिन्दी' या 'गाय' के प्रश्न उठाकर जनता में एक विशिष्ट भावना जाग्रत करने की कोशिश की है। किसीने 'समाजवाद' तो किसीने 'स्वतन्त्रवाद' का नारा बुलन्द किया है। जब १९६५ में पाकिस्तान और भारत के बीच संघर्ष खड़ा हो गया तब सभी दल एक होकर देश की सुरक्षा के लिए तत्पर होगये थे। उसके पहले चीन के आक्रमण के समय भी भारत में अपूर्व राष्ट्रीयता व समन्वय का दर्शन मिला था। लेकिन धीरे-धीरे वह गायब हो गया। जैसा आचार्य विनोबा अक्सर विनोद मे कहा करते है, हमें आपसी एकता हासिल करने के लिए चीन या पाकिस्तान के आक्रमण की राह देखने की जरूर नहीं होनी चाहिए। देश में गरीबी, बेकारी व आर्थिक विषमता इतनी भयानक व दर्दनाक हैं कि उन्हें दूर करने के लिए हमें 'एमर्जेन्सी'

की भावना से निरन्तर काम में जुटे रहना चाहिए। जनता की गरीबी व विषमता को दूर करने का शायद सबसे अच्छा साधन 'ग्रामदान' है। किन्तु क्या उसकी प्राप्ति के लिए भी कार्यकर्ताओं मे समुचित उत्साह व'मिशनरी' भावना विद्यमान है ?

गम्भीरता से विचार करने पर मुझे यह महसूस हो रहा है कि स्थायी एकता व सह-कार्य की भावना पैदा होने के लिए आध्यात्मिकता की नितान्त आवश्यकता है। दूसरे शब्दो में यू कहे कि वेदान्त-दर्शन के विना सच्चा भाईचारा स्थापित नही हो सकता। जो ऋषि 'ईशावास्यम् इदम् सर्वम्' गा सकते थे, वे ही 'ॐ सह नाववतु' मन्त्र का उच्चारण करने योग्य थे। आध्यात्मिक बुनियाद के बिना ठोस राष्ट्रीयता का निर्माण करना शक्य नही हो सकता है। इसीलिए बापू नें आजादी की लड़ाई के साथ सामूहिक प्रार्थना का कार्यक्रम बडी कुशलता से जोड दिया था। 'भारत माता की जय!' के साथ उन्होने 'रघुपति राघव राजा राम!' की धुनि भी घर-घर में गुजारित कर दी थी। हमारे प्राचीन ऋषियो ने हमे बारबार सभी के प्रति मित्र-भावना से व्यवहार करने का उपदेश दिया था

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

(यजुर्वेद ३६।१८)

अर्थात् सभी जीव मेरी ओर मित्र-भावना से देखें,
मैं सभी जीवो की ओर मित्र-भावना से देखूँ,
और हम सब एक दूसरे की ओर मित्र-भावना से देखे।

यह तभी सम्भव हो सकता है जब महात्मा कबीर के साथ हम सच्चे दिल से गा सकें :

घट घट में वह साईं रमता,
कटुक वचन मत बोल रे !

और तभी हम विशाल हृदय व व्यापक बुद्धि से ऋग्वेद के रचियता के साथ स्वर में स्वर मिलाकर प्रार्थना कर सकते हैं :

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानं अस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।

अर्थात्—हमारा ध्येय समान हो, हमारे हृदय समान हों, हमारे मन समान हों, ताकि हम प्रसन्नता के साथ रह सकें ।

: १४ :

'ईशावास्यं इदं सर्वम्'

एक बार भगवान् बुद्ध से किसी शिष्य ने ईश्वर के बारे में पूछा। उन्होने शान्ति-भाव से उत्तर दिया :

'जो ईश्वर के सम्बन्ध में पूछता है, वह गलती करता है, जोर जो उत्तर देता है वह भी भूल करता है।"

गौतम बुद्ध ने तो सदाचार व 'पचशील' पर ही अधिक जोर दिया और अष्टाग-मार्ग द्वारा मानव-जीवन के कल्याण का उपदेश प्रसारित किया।

कविवर रहीम ने भी ईश्वर की चर्चा के बारे में बडे मार्के का दोहा लिखा था :

रहिमन बात अगम्य है, कहन-सुनन की नाहिं।
जो जानत सो कहत नहिं, कहत सो जानत नाहिं।

आजकल ईश्वर और ब्रह्म की मीमासा करनेवाले इतनी संकुचित दृष्टि से एक-दूसरे की बुराई करने लगते है कि यदि वे ईश्वर की चर्चा ही न करे तो दुनिया के लिए अधिक हितकर हो। यह विषय तर्क का नही, साधना व श्रद्धा का है।

× × ×

इन दिनो हमारे नवयुवको मे ईश्वर के प्रति बिलकुल विश्वास नही रहा है। वे इस कल्पना को ही निराधार व अवैज्ञानिक समझते हैं। कई नौजवान तो निरे 'अनीश्वरवादी' बन

गये है और उनका जीवन बिना पतवार की नाव जैसा बहता जारहा है। किन्तु यदि हम इस विषय को वैज्ञानिक ढंग से समझने व समझाने की कोशिश करे तो पायेंगे कि आधुनिक साइन्स व वेदान्त में किसी प्रकार के संघर्ष का कारण नही है। हमारे ऋषियों ने गाया है :

ईशावास्यं इदं सर्वं, यत्किंच जगत्यां जगत्

और हमारे महान् वैज्ञानिको ने भी अणु-शक्ति का विकास करने के बाद यही समझाया है कि प्रत्येक वस्तु में 'एटम' का तेज विद्यमान है। एक ही 'एटम' का विस्फोट करने से अद्भुत शक्ति पैदा की जा सकती है। इस अणु-शक्ति में उत्पादन करने, पालन करने व मारने के तीनों गुण है। उससे कृषि व औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन किया जा सकता है। कई प्रकार के 'आइसोटोपो' की सहायता से चमत्कारी दवाइयो का ईजाद किया गया है जो मानव-जीवन का पालन करती है। और अणु-बम बनाकर इसी शक्ति द्वारा संसार का विध्वंस भी किया जा सकता है। इस प्रकार अणु-शक्ति में ब्रह्मा, विष्णु और महेश-त्रिमूर्ति के दर्शन प्राप्त हो सकते है। यदि इस अणु-शक्ति को हजारों-लाखों गुना बढ़ाया जा सके तो वह ब्रह्म के तेज की कुछ झलक दिखा सकेगी न ? इस दृष्टि से आधुनिक विज्ञान हमें वेदान्त की ओर ले जाने में सफल हो सकता है। और मेरी तो अब यह निश्चित धारणा बनती जारही है कि विज्ञान की पराकाष्ठा ब्रह्म-ज्ञान ही हो सकती है।

वर्तमान साइन्स हमें यही सिखाता है कि जो चीज जितनी सूक्ष्म बन जाती है वह उतनी ही अधिक शक्तिशाली हो जाती

है। अणु-शक्ति का यही रहस्य है। किन्तु ब्रह्म की अपेक्षा तो 'एटम' बहुत स्थूल माना जाना चाहिए। 'एटम' को करोड़-गुना सूक्ष्म बनाने पर ब्रह्म की शक्ति व तेज का अनुमान लगाया जा सकता है। 'सूर्य-कोटि सम-प्रभ'।

गीता के ग्यारहवे अध्याय में विश्व-रूप दर्शन का वर्णन करते समय संजय ने विस्मित होकर कहा—

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः ।।

अर्थात्, यदि हजार सूर्य एक साथ आकाश में चमकने लगे तो महात्मन् के तेजयुक्त गौरव की शायद कुछ बराबरी कर सके।

और जब 'एटम' ही प्रत्येक वस्तु में समाया हुआ है तो फिर परमेश्वर 'यत् कि च जगत्याजगत्' में लीन हो तो इसमें क्या आश्चर्य है ? किसी सूफी कवि ने इसी वेदान्त-दर्शन को बड़े मार्मिक ढंग से कहा है.

हर शय में तू ही शामिल है।
जर्रे जर्रे में तेरा नूर कामिल है।

× × ×

यही दैवी-शक्ति हम सभीके हृदय में विद्यमान है । यही हमारे जीवन का स्रोत है ! वह शरीर को तेजोमय बनाती है। उस जीवन-शक्ति के निकल जाने से शरीर मृत हो जाता है और जलाकर पचभूतों में मिला दिया जाता है। जबतक हम अपने स्थूल शरीर को ही महत्व देते रहते है, हमारी आध्यात्मिक शक्ति सीमित व कुठित हो जाती है। किन्तु जब हम अपने

असली ब्रह्म-रूप का आभास पा जाते है तो हमारी शक्ति असीम बन जाती है और एक प्रकार से हमी ब्रह्म हो जाते हैं । 'अहम् ब्रह्मास्मि !'

इस आत्म-ज्ञान को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना, तप व त्याग की आवश्यकता होती है। 'तेन त्यक्तेन भुजीथा'। मन व आत्मा की शुद्धि के लिए शरीर की शुद्धि भी जरूरी मानी गई है। इसीलिए हमारे धर्म ग्रन्थों में "शौच" व ब्रह्मचर्य पर इतना जोर दिया गया है। हम जैसा भोजन करते है वैसा ही हमारा शरीर बनता है। इसी दृष्टि से मांस-मदिरा को आध्यात्मिक विकास के लिए वर्जित माना जाता है। किन्तु दुर्भाग्य से हमारे धर्म-पथियों ने ऊपरी शुद्धता की लकीर को पीटना ही जारी रखा और उसकी अन्दरूनी अहमियत को दरगुजर कर दिया। इसीलिए शुद्धता की जगह पाखंड का बोलबाला होगया।

कुछ वर्ष पहले जब आचार्य विनोबाजी काश्मीर की पद्-यात्रा करने गये तो हमारा ज्येष्ठ पुत्र चि० भरतकुमार भी उनके साथ था। उन्ही दिनों एक पडाव पर उसका जन्म-दिवस आया। उसकी मा ने पूज्य विनोबाजी से आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि चि० भरत की वर्षगाठ पर उसे कोई गुरु-मंत्र प्रदान किया जाय। विनोबाजी ने थोड़ी देर तक गंभीर विचार किया और फिर स्वयम् हाथ से मुडकोपनिपद का यह श्लोक लिखकर दिया :

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा,
सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।

अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यन्ति यतयः क्षीण दोषाः ॥

अर्थात् यह आत्मा हमेशा सत्य से, तप से, यथार्थ ज्ञान से और ब्रह्मचर्य से पाया जाता है। पाप रहित और प्रयत्नशील लोग इस निष्कलक और प्रकाश-स्वरूप आत्मा को अपने अत करण मे देख सकते है।

× × ×

जब मे १९४२ के 'भारत-छोडो' आन्दोलन मे वर्धा-जेल में गिरफ्तार किया गया तो उन दिनों एक गुजराती भाई ने बड़ा ही सुन्दर भजन सुनाया था। वह मुझे आज भी अकसर स्मरण हो जाता है .

मुझे राम से कोई मिलादे।
कोई कहे वह बसे अवध में,
कोई कहे वृन्दावन में।
कोई कहे तीरथ-मन्दिर में,
कोई कहे मिलते वन में।
देख सकू मै उनको अन्दर
ऐसी ज्योति जगादे।

सद्गुरु नानक ने भी इसी भाव को दूसरे शब्दो में गाया था.

'काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व-निवासी सदा-अलेपा, सो ही संग समाई।
जन नानक बिन आपा चीन्हें, मिटे न भ्रम की काई।

जब हम इस बात का अच्छी तरह अनुभव कर लेते है कि हम यह बाहरी शरीर नही किन्तु अन्तर आत्मा है, उसी परमे-

श्वर के ज्योतिर्मय अंश है, तो हम कामनारहित हो 'राम' में ही रम जाते हैं और गुनगुनाने लगते है :

सिया राम मय सब जग जानी,
करौं प्रणाम जोरि जुग पानी ।

× × ×

पूज्य विनोबाजी अक्सर कहा करते है कि आनेवाले जमाने में अब हमें धर्म के स्थान पर अध्यात्म और राजनीति की जगह विज्ञान का सहारा लेना होगा। विज्ञान व अध्यात्म के संयोग से दुनिया शाति व प्रगति की ओर तेजी से बढ सकेगी । किन्तु यदि विज्ञान के साथ हिंसापूर्ण राजनीति का गठ-बन्धन हो गया तो फिर हमारा सर्वनाश निश्चित ही है। हमें यह भी स्पष्टरूप से समझ लेना चाहिए कि विज्ञान व 'स्पिरिचुएलटी' में कोई परास्परिक विरोध नही है। विज्ञान भी धीरे-धीरे आध्यात्मिक साधना की ओर ही बढ रहा है। और अध्यात्म को भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना लाजिमी होता जा रहा है । 'एटम' शक्ति व आत्म-शक्ति के बीच की दीवार सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती जायगी और वह समय जल्द ही आ जायगा जब विज्ञान व निष्कामपूर्ण आत्म-ज्ञान एक दूसरे में लीन हो जायंगे। तब हमारे 'साइन्टिस्ट' महापुरुष प्राचीन ऋषियो के स्वर में अपना स्वर मिलाकर कठोपनिषद् के इस श्लोक का उच्चारण करेंगे :

अणोरणीयान् महतो महीयान्
आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतु. पश्यति वीतशोको
धातु· प्रसादान्महिमानमात्मन. ॥

अर्थात्, आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, बड़े से भी बडा है। प्राणी के हृदय में वह स्थित है। निष्काम पुरुष विधाता के प्रसाद से आत्मा की महिमा शोकरहित होकर देखता है।

बड़ा ही मार्मिक है यह श्लोक। इसमें ब्रह्म का दिव्य-दर्शन मिलता है और उसकी साधना का पवित्र साधन भी। निष्काम-भावना हमारी अन्तरज्योति को जगा देती है और हमें परमेश्वर की अपूर्व शक्ति का आभास करा देती है।

: १५ :

'जैसे राखहु वैसेहि रहौं'

इन दिनो हम सुबह की सामूहिक प्रार्थना में गांधीजी की 'आत्म-कथा' का एक बार फिर अध्ययन कर रहे है। उसको जितनी गहराई से पढिये उतनी ही अधिक अनुभूति प्राप्त होती है। इंग्लैड से वापस आने पर बापू ने भारत में वकालत का पेशा शुरू करने की कितनी कोशिश की। किन्तु आखिर देश छोडकर दक्षिण अफ्रीका जाना पड़ा और वहा बैरिस्टर बनने के बजाय एक कुशल सत्याग्रही बन गए। उनका दक्षिण अफ्रीका का अनुभव भारत में काम आया। मोहनदास करमचन्द गाधीजी अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिए काफी समय तक परेशान रहे। अन्त में देश को आजाद कर उसके प्रात.स्मरणीय राष्ट्रपिता बने। प्रारम्भ में वह कितने साधारण व्यक्ति थे, मामूली से मामूली। लेकिन अथक परिश्रम, श्रद्धापूर्ण ईमानदारी, नि.स्वार्थता व सत्यपरायणता की वजह से बापू भारत के ही नही विश्व के 'महात्मा' कहलाते हैं। उन्होने न सुख को सुख समझा, और न दुःख को दुःख। 'गीता' उनकी प्रेरणास्रोत रही और वह सदा भक्त सूरदास के साथ गुनगुनाते थे, "जैसे राखहु वैसे हि रहौं।"

× × ×

कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी में पडित जवाहरलाल नेहरू ने साइन्स का अध्ययन किया। इस विषय में उनकी विशेष रुचि भी थी। लेकिन पण्डित मोतीलाल की तीव्र इच्छा थी कि जवाहरलाल उन जैसा नामी वकील बने। गाधीजी की राजनीति व सार्वजनिक जीवन से प्रभावित हो प० नेहरू भारत की आजादी की लडाई के कुशल सेनानी बने और फिर स्वतन्त्र भारत के प्रधान मन्त्री व राष्ट्र-निर्माता।

जवाहरलालजी भी एक महान् कर्मयोगी थे। उनके लिए 'आराम हराम' था। जिन्दगी के अन्तिम क्षणों तक वह अपने कर्तव्य-पालन मे लगे रहे। जैसा उन्होने एक बार युवक-सम्मेलन मे कहा था, उनके तीन आराध्यदेव थे—गीता, गौतम और गांधी। उनके निर्वाण के बाद हमने देखा कि उनके सोने के कमरे में पलंग के नजदीक मेज पर 'गीता' रखी रहती थी और यह भी वड़ा सयोग रहा कि वुद्ध-जयन्ती के दिन ही उनका देहावसान हुआ।

× × ×

जव मैं योजना कमीशन का सदस्य था तव आएदिन विभिन्न राज्यो के मुख्य मन्त्री अपनी-अपनी योजनाएं लेकर कमीशन की स्वीकृति के लिए दिल्ली आते रहते थे। एक दिन डा० विधानचन्द्र राय भी पश्चिम बगाल की कुछ योजनाए साथ में लाए और वडे आग्रहपूर्वक उनका गणित समझाने लगे। मैंने आश्चर्य से पूछा—"विधानवावू आप है तो डाक्टर, लेकिन आपकी गणित बड़ी मजवूत है।"

डा० राय ने हँसकर कहा, "अच्छा तो इसकी कहानी

सुनिये। मै कॉलेज मे गणित का बडा अच्छा विद्यार्थी था। इसलिए मेरी हार्दिक इच्छा इन्जीनियर बनने की थी। प्रथम श्रेणी में बी० एस-सी० (आनर्स) परीक्षा उत्तीर्ण होनें के बाद मैंने इन्जीनियरिंग व मेडीकल कॉलिजों में भर्ती होने की अर्जियां दी। मैं चाहता था कि प्रथम श्रेणी में पास होने की वजह से मुझे एक वर्ष की छूट मिले। इन्जीनियरिंग कॉलेज के प्रिंसिपल ने इस प्रकार की छूट देने से इन्कार कर दिया। मुझे बड़ी निराशा हुई। इत्तफाक से उसी दिन मेडीकल कॉलेज के प्रिंसिपल की चिट्ठी आ गई, जिसमें उन्होने मेरी माग स्वीकार कर ली। मैं उसी दिन उस कॉलिज में भर्ती हो गया।

"दूसरे दिन इन्जिनियरिंग कॉलेज के प्रिंसिपल साहब की भी एक और चिट्ठी आई कि तुम्हे एक वर्ष की छूट दे दी जायगी। लेकिन मैंने फौरन उत्तर दे दिया, "अब तो बहुत देर होगई।" इस प्रकार इंजीनियर बनने की गहरी इच्छा होते हुए भी आखिर में एक डॉक्टर बन गया।"

"डॉ० साहब! देश के लिए यह अच्छा ही हुआ कि आप मेडीकल लाइन मे आ गये। आपने देश का माथा ऊचा किया है!" मैने कहा!

विधानबाबू मुस्कराकर फौरन बोले, "हा, अगर मैं इन्जीनियर बन जाता तो शायद देश की और ज्यादा सेवा कर सकता! लेकिन भगवान की जो इच्छा।"

इसी प्रकार न जाने महापुरुषो के जीवन में कितनी घटनाएं हुई है। उन्हे यहा दुहराने की जरूरत नही है।

× × ×

आजकल का जमाना योजनाओ का है। प्रयत्न किया जाता है कि शुरू से ही बच्चो को व्यवसायी मार्गदर्शन दिया जाय, ताकि वे अपनी रुचि के अनुसार ही जीवन में प्रवेश कर सके और अपना मनचाहा धन्धा अपना सके। लेकिन फिर भी हम देखते है कि कानून पढे नवयुवक शिक्षक का काम कर रहे है, साइन्स के विद्यार्थी व्यापार मै लगे हुए है और कला व सगीत के प्रेमी साधारण दफ्तरों मे हिसाब रख रहे है। इसमें हमारी शिक्षा-प्रणाली का भी दोप अवश्य है, किन्तु फिर भी 'भाग्य' हमारा पीछा नही छोड़ता। सभी कोशिशे करने पर हम अक्सर अपनी आकाक्षा पूरी करने में सफल नहीं हो पाते।

इसका अर्थ यह नही कि हम अपने जीवन के ध्येय की प्राप्ति के लिए भरसक पुरुपार्थ ही न करे और भगवान् की इच्छा के भरोसे बैठे रहे। पुरुपार्थ न करना महापाप माना गया है। महर्षि वसष्ठि ने 'योगवासिष्ठ' ग्रन्थ में भगवान् रामचन्द्र से इसी पुरुषार्थ की महिमा बडे मार्मिक शब्दो मे वर्णन की है। लेकिन सभी तरह के प्रयत्न करने के बावजूद हमे यह भी स्वीकार करना होगा कि कर्मो का फल हमारे भाग्य के अनुसार ही मिलता रहता है :

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस विधि हाथ।।

हमें भाग्यवादी होने की जरूरत नही है। 'कर्म' का तत्वज्ञान सत्य है या नही, इस विवाद में भी पडने की आवश्यकता नही है। किन्तु पुरुषार्थी व आशावादी होते हुए भी हमें विफलता स्वीकार करने की हिम्मत व नम्रता रखना होगा, नही तो

हमारा दिल व दिमाग परेशानियों से खण्डित होकर ज़िन्दगी को तोड़-मरोड़ डालेगा और हमारे कुटुम्बियों को भी अत्यन्त दुखी बनायेगा।

× × ×

हम चाहे या न चाहे, हमें अन्त में 'यथा-लाभ-संतोष' के विचार को अपनाना ही पडेगा। जैसा तुलसीदासजी ने 'विनय-पत्रिका' में लिखा है :

विगत मान, सम सीतल मन,
पर-गुन, नहीं दोष कहौंगों।
परिहरि देह जनित चिन्ता,
दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो॥

मेरे श्रद्धेय पिता धर्मनारायणजी ने इन्ही पंक्तियों को अपने जीवन की अतिम घडियो में मुझे पास बुलाकर धीमी किन्तु विश्वासपूर्ण आवाज में बड़ी सावधानी से सुनाया था।

और आखिर यदि हम अपने जीवन में सतोष की साधना नही करेंगे तो फिर दु ख के थपेडों को किस तरह झेल सकेंगे? आजकल हम देखते है कि जरा-सा दु.ख पड़ने पर कई नवयुवक 'आत्म-हत्या' कर डालते है। परीक्षा में असफल हो गये कि आत्महत्या करली। किसी युवती के प्रेम में थोड़ी बाधा आ गई कि तालाब में डूब मरे। यह तो केवल नादानी ही नही, घोर कायरता है जो आध्यात्मिक दृष्टि से भी बडी भयानक है। आत्म-हत्या का विचार नास्तिकता की निशानी है। अगर ईश्वर पर विश्वास नही तो कम-से-कम खुद पर तो विश्वास होना चाहिए। असफल होने पर हमें हिम्मत नही हारना चाहिए;

परिश्रम से, श्रद्धा से, हमारी कोशिशे चालू रहनी चाहिए।

जब मै सन् १९४२ में बुलढाना जेल मे नजरबन्द था तब इसी विषय पर एक दोहा लिखा था :

मानव! मत तू फिक्र कर, यश अपयश सम हृव्य।
बल, धीरज, मन, बुद्धि से करता जा कर्तव्य॥

आदरणीय राजेन्द्रबाबू स्वास्थ्य की दृष्टि से कई बार बजाजवाडी, वर्धा के अतिथिगृह मे रहते थे। वह बडे ही श्रद्धा-वान भक्त थे। उनके कमरे में तुलसीदासजी की यह मार्मिक पंक्तिया टगी रहती थी .

हारिये न हिम्मत, बिसारिये न हरि को नाम,
जाहि विधि राखे राम, ताहि बिधि रहिये॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी तो गीता के बारहवे अध्याय भक्तों के लक्षण वर्णन करते हुए कहा है :

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

और मनु महाराज ने सक्षेप में किन्तु स्पष्ट रूप से मनुष्य-मात्र को एक सनातन सत्य का निर्देश दे दिया है ·

संतोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।

: १६ :

'साधो ! सहज समाधि भली'

वाल्मीकि रामायण के अन्त में रामराज्य का वर्णन करते हुए महाकवि ने एक बड़ी रोचक किन्तु सारगर्भित कथा का जिक्र किया है। भगवान् राम रोज सुबह अपने दरबार में विराजमान होते थे और उनकी आज्ञा थी कि उनके पास आने से किसी को न रोका जाय। एक दिन सिर्फ एक कुत्ता भोंकता हुआ खड़ा था। दरबान ने भगवान् की अनुमति पाकर उस कुत्ते को दरबार में जाने दिया। रामचन्द्रजी से पूछे जाने पर कुत्ते ने एक ब्राह्मण की शिकायत की, जिसने उसे रास्ते में लाठी से बिना कारण ही मारा था। उसके सिर में काफी चोट लगने से खून भी बह रहा था।

राजा राम का आदेश पाने पर उस ब्राह्मण को दरबार में पेश किया गया। ब्राह्मण ने हाथ जोड़कर कहा :

"महाराज, मैं कई दिन से भूखा हूं। रास्ते में यह कुत्ता बैठा था। आवाज देने पर भी यह उठा नहीं। मुझे गुस्सा आ-गया और मैंने इसे लाठी से मार दिया। मुझसे गलती हुई; क्षमा कीजिये।"

भगवान् ने फिर कुत्ते से पूछा कि ब्राह्मण को क्या सजा दी जाय। उसने धीरे-से उत्तर दिया, "महाराज, इसे मठाधीश बना

ोजिए।"

"यह सज़ा हुई ?" रामचन्द्रजी ने आश्चर्य से पूछा।

कुत्ते ने नम्रता से कहा, "महाराज! मै पिछले जन्म में एक ठाधीश ही था। बहुत-से पाप करने की वजह से मैने इस जन्म ा कुत्ते की योनि पाई है।"

कितनी मार्मिक कथा है यह! काश, सभी मन्दिरों व मठों । अध्यक्ष इस प्रकरण को ध्यान से पढकर व समझकर अपने ीवन को सुधार ले।

और मठाधीशो का यह हाल इस समय ही नही है, सैकडो ार्षो से ऐसा ही चला आ रहा है। शायद इसी अवस्था से खिन्न ोकर सन्त कबीर ने गाया था·

साधो! सहज समाधि भली!'
जहँ-जहँ डोलों सो परिकरमा,
जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दंडवत,
पूजौं और न देवा॥

× × ×

इसका यह अर्थ नही कि धर्म-भावना गलत या दकियानूसी :। धर्म तो जीवन की नीव है, उसका आधार है। किन्तु जब ार्मिकता को संकुचित रूढियों से जकड दिया जाता है और ाह स्वार्थ व भोग का साधन बन जाती है तब वह उन्नति के ाजाय हमे घोर पतन की ओर खीचती है।

कई वर्ष पहले श्री जे० कृष्णमूर्तिजी ने एक बड़े मजे की ात सुनाई थी। प्राचीन काल में एक बार शैतान सड़क पर भीड़

के बीच चला जा रहा था, अचानक वह रुका और किसी चीज़ को उठाकर अपनी थैली में बड़ी सावधानी से रख लिया। पास एक सन्त खड़ा था। उसने उत्सुकता से शैतान से पूछा :

"तुमने किस वस्तु को उठाकर थैली में रख लिया ?"

"सत्य को !" शैतान ने तुरन्त उत्तर दिया।

"सत्य से तुम्हारा क्या वास्ता, रे शैतान !"

"अब मै उसे सगठित करूगा।" शैतान ने मुस्कराकर जवाब दिया।

"मै सत्य को सगठित करूगा !" बस, सत्य का सगठन ही उसे दूषित बना देता है, उसकी स्वाभाविकता व सहजता को कुण्ठित कर देता है। इसी वजह से कृष्णमूर्तिजी ने अपना सम्बन्ध थियोसोफिकल सोसाइटी से नही रखा और स्वतन्त्र-रूप से अपनी विचारधारा का प्रतिपादन करते रहे हैं।

× × ×

हमारे जीवन में 'सहजता ही बड़े महत्व की चीज है। कृत्रिमता आते ही हमारी जिन्दगी में कई प्रकार की विकृतियां दाखिल हो जाती है और आध्यात्मिक अवनति होने लगती है। इसलिए सन्त कबीर ने 'सहज समाधि' को इतना ऊंचा स्थान दिया है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी रामायण में 'सहज' शब्द का प्रयोग बड़ी सावधानी व कुशलता से किया है। जब ऋषि वाल्मीकि से रामचन्द्रजी ने पूछा कि वे उनके आश्रम में कहां निवास करें, तो यही उत्तर मिला :

जाहि न चाहिअ कबहुं कछु,
तुम्ह सन सहज सनेहु ।

कागभुशुण्डजी ने गरुड़जी को सन्तो के गुण समझाते हुए कहा

पर उपकार वचन मन काया ।
सन्त सुभाउ सहज खगराया ।।

ज्योही हम ईश्वरीय स्वरूप को भूलकर माया के चक्कर मे पड जाते है, हम बन्धन मे फस कर दुख के सागर मे बहने लगते है :

ईश्वर अंश जीव अविनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ।।
सो मायाबस भयउ गोसाईं ।
बँध्यो कीट मरकट की नाईं ।।

'विनय-पत्रिका' मे सन्त तुलसीदासजी ने गाया है .

तुलसी जागेते जाय ताप तिहूँ ताय रे ।
राम-नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे ।।

वह फिर बडे दु ख से लिखते है

कबहूं मन विस्राम न मान्यो ।
निस दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख,
जहँ-तहँ इंद्रिन तान्यो ।।

और गोस्वामीजी की ये पक्तिया कितनी सुन्दर व मार्मिक है :

सहज सनेही राम सौं तै कियो न सहज सनेह ।
तातें भव-भाजन भयो, सुनु अजहुँ सिखावन एह ।।

× × ×

उस साधु की कहानी हमने छुटपन में सुनी थी, जो गंगाजी में स्नान करते समय बार-बार एक बहते हुए बिच्छू को अपने हाथ पर ले लेता था और वह बिच्छू उसके हाथ में डंक मारता जाता था। पास खड़े हुए एक यात्री ने पूछा :

"साधु महाराज, आपको यह बिच्छू बार-बार काट रहा है। फिर भी आप उसे बचाने की कोशिश क्यों कर रहे हैं ?"

तुरन्त उत्तर मिला, "भाई, इस बिच्छू का स्वभाव है काटना, और मनुष्य का सहज स्वभाव है दया व क्षमा।"

सन्तों और असन्तों के सहज स्वभावों का वर्णन करते हुए भगवान् राम ने भरत को समझाकर कहा :

सन्त असन्तन की अस करनी,
जिमि कुठार चन्दन आचरनी।
काटइ परसु मलय सुनु भाई,
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई॥

आचार्य विनोबा दिन-रात 'सत्य, प्रेम, करुणा' का सन्देश गांव-गांव में दे रहे हैं। मानव का जो सहज स्वभाव है उसीके अनुसार यदि हमारा जीवन अनायास संचालित होता रहे तो वर्तमान संसार में 'राम-राज्य' की झलक मिल सकती है।

× × ×

कुछ समय पहले हम बैसाखी के पुण्य पर्व पर गंगा-स्नान के लिए हरिद्वार गए थे। वहां कई विख्यात साधु व सन्तों के दर्शन करने का अवसर मिला। उनके व्याख्यान भी सुने। उन्होंने जिस ढंग से गीता व रामायण व उपनिषदों का प्रति-

पादन किया वह काफी विद्वत्तापूर्ण था। साधारण अपढ जनता को इस प्रकार श्रवण-भक्ति द्वारा हमारा प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान मिलता रहता है, यह अच्छा है। किन्तु मैंने देखा कि हरिद्वार व ऋषिकेश में कई बड़े मठों का निर्माण होगया है जिनके पास लाखो-करोडो की सम्पत्ति होगई है। साधु-सन्त काफी आरामी जीवन व्यतीत करते है और दु ख का विषय तो यह है कि उनमें आपसी राग-द्वेष की मात्रा भी काफी है। एक ही मच पर दो साधुओ का बैठकर भाषण देना कठिन हो जाता है। विभिन्न आश्रमों की काया, इमारतो व कमरों की सख्या, दिन-दिन विशाल व व्यापक होती जा रही हैं। किन्तु उसी प्रमाण में शायद उनका सहज तेज व प्रभाव घटता जा रहा है।

उसी समय आदरणीय श्री आनन्दमयी मा के आश्रम में भी जाने का मौका मिला। वहा कुछ घण्टे बिताकर बडा आनन्द व सन्तोष हुआ। श्री मा के उत्सव में बहुत-से साधु-सन्त भी पधारे थे। एक साथ बैठे, एक साथ भोजन किया, सद्भावना का वातावरण था। सभी ने कहा कि श्री मा के प्रेमभरे निमन्त्रण को स्वीकार करना उनके लिए आवश्यक हो गया था। श्रद्धेया आनन्ददयी मा का सम्बन्ध सभी से प्रेममय है। किसी से राग-द्वेष नही। उनके जीवन में किसी प्रकार की बनावट नही है, सहजता है। उन्होने हमें समझाते हुए बडी सरलता से कहा .

"बस, हृदय में भगवान् का नाम हमेशा जपते रहना चाहिए, प्रेम व श्रद्धा से। फिर ऊपरी कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ की कोई जरूरत नही है। हमारा जीवन बिल्कुल सहज, सेवामय व श्रद्धावान् होना चाहिए।"

श्रीमां के सत्सग से हमारे मन पर बहुत गहरा प्रभाव पडा। मानो वह सन्त कबीर के सुर-में-सुर मिलाकर गुनगुनाती रहती हैं :

आँख न मूँदौं, कान न रूँधौं
तनिक कष्ट नहि धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हँसि-हँसि,
सुन्दर रूप निहारौं ॥
सबद निरन्तर से मन लागा,
मलिन वासना त्यागी ।
ऊठत बैठत कबहुं न छूटै,
ऐसी तारी लागी ॥

अनावश्यक कर्मकाण्ड की जगह यदि सन्त कबीर व श्रीमा जैसी 'सहज समाधि' की ओर हमारा अधिक ध्यान जाने लगे तो समाज व देश के लिए सचमुच बहुत हितकर होगा !

: १७ :

'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्'

इस समय देश की सबसे महत्वपूर्ण समस्या अन्न की है। सारी राजनीति भी अन्न के प्रश्न से जुड गई है। चौथे आम चुनावो मे अनाज के ऊचे भावों की वजह से जनता ने काग्रेस के प्रति काफी नाराजगी का इजहार किया। यह स्वाभाविक ही था। अन्न के भावो के अनुसार अन्य जीवन-उपयोगी वस्तुओ की कीमते उतरती-चढती हैं। इसलिए अब सरकार की ओर से कृषि-उत्पादन पर बडा जोर दिया जा रहा है। हमारे राष्ट्रीय सयोजन की सबसे ऊची प्राथमिकता खेती की पैदावार बढाने पर है। भारत की जनसख्या निरन्तर बढती ही जाती है। परिवार-नियोजन कार्यक्रम को व्यापक बनाने की कोशिश की जा रही है, किन्तु आबादी पर उसका प्रभाव तो काफी वर्षो बाद ही पड सकेगा।

आश्चर्य तो यह है कि हजारो वर्ष पहले भी जब देश की जनसख्या अधिक न थी, हमारे ऋषियो ने अन्न के अधिक उत्पादन पर बहुत जोर दिया था। भृगुवल्ली के द्वितीय अनुवाक के प्रारम्भ मे ही लिखा गया है :

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्

अर्थात्, अन्न ही ब्रह्म है, इस प्रकार जानो। इसके आगे ऋषि

इसका कारण भी समझाते हैं। अन्न को ब्रह्म-स्वरूप माना गया है, क्योंकि अन्न से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही जीते है और अन्त में प्रयाण करते हुए अन्न में ही प्रविष्ट होते है। इसी उपनिषद के सप्तम् अनुवाक में कहा गया है :

अन्नं न निंद्यात्।

अर्थात्, अन्न की निन्दा न करो। और फिर अष्टम अनुवाक मे :

अन्नं न परिचक्षीत।

याने, अन्न की अवहेलना न करो। अन्त में ऋषि बड़ी श्रद्धा व दृढ संकल्प से प्रतिज्ञा करते है : 'अन्न बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्' अर्थात्, अन्न को खूब बढाओ, यह व्रत है।

आज देश मे अन्न की कमी के कारण हमें विदेशों से काफी मात्रा में अनाज मगाना पड रहा है। चूकि पिछले दो वर्षो से लगातार सूखा पड़ रहा है और कुछ दैवी प्रकोप जैसी अवस्था हो गई है, इसलिए इस समय बाहर से अन्न मंगाना कुछ हद तक शायद क्षम्य माना जा सकता है। किन्तु देश की सकल्प-शक्ति जगाये बिना यह मसला हल होना सम्भव नहीं होगा।

जब भारत आजाद हुआ और सन् १९५१ में हमारी पहली राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजना बनाई गई तब पण्डित जवाहरलाल जी ने देश के प्रथम प्रधान मन्त्री की हैसियत से प्रण किया था कि पाच वर्ष के बाद राष्ट्र बाहर से अन्न नही मगायेगा और इस दिशा में स्वयपूर्ण बन जायगा। किन्तु दूसरी और तीसरी पचवर्षीय योजनाएं पूरी हो जाने के बाद भी भारत को विदेशो से अन्न के लिए भीख मागनी पड़ रही है। यह दशा सचमुच

दयनीय व शर्मनाक है। यह सही है कि आज के विज्ञान-युग में भी हमारी खेती वर्षा पर काफी मात्रा में निर्भर रहती है और अगर किसी साल अच्छी 'मानसून' न हुई तो उत्पादन में बहुत अन्तर पड़ जाता है। फिर भी क्या हमने वे सभी प्रयत्न कर लिये हैं जो अन्न को तेज़ी से बढ़ाने के लिए जरूरी है?

जब मै योजना-कमीशन का सदस्य था तब एक दिन सुबह की प्रार्थना मे 'महाभारत' का वह भाग सुनकर बड़ा आश्चर्य-चकित हुआ जहा युधिष्ठिर के दरबार में नारद मुनि गये और राजा से सौ प्रश्न पूछे। कुशल-क्षेम के बाद नारद ने पूछा .

"राजन्! आपके राज्य में कृषि कही वर्षा पर तो निर्भर नही रहती?" मै तो यह प्रश्न सुनकर ही दग रह गया। इतने वर्षो तक देश का आर्थिक सयोजन होने के पश्चात् भी हमारे नेता यह दावा नही कर सकते कि खेती वर्षा पर निर्भर नहीं है। फिर हजारों वर्ष पहले नारद ने राजा से यह सवाल करने की हिम्मत की। इस प्रश्न का रहस्य आगे के दो और सवालों से स्पष्ट हो गया—"क्या आपके राज्य के प्रत्येक गाव में कुए व तालाब है?" और अन्त मे "क्या इन कुओ व तालाबो की हर साल मरम्मत होती है?" इन तीनो प्रश्नो में हमारे प्राचीन कृषि-सम्बन्धी आर्थिक सयोजन का सारा निचोड़ आ गया है।

इसी प्राचीन अनुभव के आधार पर हम अब देश में 'लघु सिंचाई-योजनाओं' पर सबसे अधिक बल दे रहे है। कुछ समय पहले जब हम आचार्य विनोबा से मिले तो भारत के वर्तमान आर्थिक सकट का जिक्र करते हुए उन्होने बडे दुःख से कहा

"आजादी मिलने के बाद जब मैने अपने पवनार-आश्रम में

कांचन-मुक्ति का प्रयोग किया था तो सबसे पहले मुझे सहज एक कुआं खोदने की ही सूझी। उसके जल से हमने खेती व बागवानी शुरू कर दी। बाद में भूदान-आन्दोलन के साथ मैंने 'कूपदान' कार्यक्रम भी देश को आग्रहपूर्वक सुझाया। किन्तु आज हम जहा-के-तहा है। मै तो चाहता हूं कि सम्भवत. हरेक खेत में एक कुआ हो। पाताल-गगा को जमीन पर लाकर ही हम अन्न की समस्या पर विजय पा सकते हैं।"

आजकल सूखे का मुकाबला करने के लिए विभिन्न सूबों मे कच्चे कुए खोदने का काम जोरो से चल रहा है। कुछ समय पहले जब मैं पदवीदान-भाषण देने के लिए गोरखपुर गया था तो सड़क के दोनों ओर सैकडो, हजारो कच्चे कुए खुदे हुए देखकर बहुत सन्तोष हुआ। शिक्षको, विद्यार्थियो व सामाजिक कार्यकर्ताओं ने भी इस कूप-आन्दोलन में उत्साह से भाग लिया था। लेकिन मुझे नारदजी के तीसरे प्रश्न का स्मरण हो आया. "राजन्, क्या इन कुओ व तालावो की हर साल मरम्मत होती है ?" पूछने पर मालूम हुआ कि गोरखपुर जिले में कुएं तो हजारों खुद गए है, लेकिन वे बरसात आने पर मिट्टी से फिर भर जायेगे। सिर्फ दस फीसदी को पक्का बनाने की योजना है।

यही हाल अन्य क्षेत्रों व राज्यों का है। दक्षिण भारत मे भी हमारे पूर्वजों ने हजारों तालाबो द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध किया था। नदियो मे भी छोटे-छोटे बांधो के ज़रिये कृषि-उत्पादन बढाने का प्रयत्न किया गया था। किन्तु इन तालाबों व बांधों की सालाना मरम्मत न होने के कारण उनमें से बहुत बड़ी संख्या सिचाई के लिए बेकार हो गई है। इसीलिए हमने

योजना-आयोग की ओर से बार-बार सभी राज्यो को हिदायतें भेजी थी कि लघु सिचाई-योजनाओ मे मरम्मत पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। लेकिन अफसोस है कि इस ओर अभी भी हमारी राज्य-सरकारों का बहुत कम ध्यान जाता है।

× × ×

इन दिनो रासायनिक खाद का बडा बोलवाला है। सभी जगह कृत्रिमखाद बाटने के लक्ष्य बने हुए है। हरेक सरकारी अफसर इसी फिक्र मे है कि उसका लक्ष्य कैसे पूरा किया जाय, फिर, चाहे इस रासायनिक खाद से किसान को फायदा हो या नुकसान। यह जाहिर है कि रासायनिक खाद उन्ही खेतों में लाभकारी सिद्ध होगी जहा सिचाई का इन्तजाम है! पानी के बिना इस तेज खाद के डालने से तो फसल बढ़ने के बजाय सूख ही जायगी। यह भी जरूरी है कि रासायनिक खाद के साथ 'कम्पोस्ट व हरी खाद' मिश्रित की जाय। गोबर व हरे पत्तो के मिलाने से ज़मीन की उर्वरा-शक्ति बढती है और कृत्रिम खाद की गर्मी भी कुछ कम हो जाती है।

हम जानते हैं कि जापान की फी-एकड उपज भारत से तिगुनी-चौगुनी है। इस चमत्कार का प्रत्यक्ष दर्शन करने और उसके कारण समझने के लिए मै कुछ साल पहले योजना कमीशन की ओर से जापान गया था। वहा मैंने ग्रामीण क्षेत्रो का काफी भ्रमण किया। जापानी किसानो ने मुझसे कहा, "साहब! हमारे यहा एक कहावत है कि केवल रासायनिक खाद का प्रयोग पिता के लिए तो अच्छा है, लेकिन बच्चों के लिए बहुत बुरा।"

"मै इसका ठीक अर्थ नही समझा?" मैने धीरे-से पूछा।

एक बूढ़े किसान ने बड़ी शांति से उत्तर दिया, "इसका मतलब तो साफ जाहिर है। सिर्फ कृत्रिम खाद के इस्तेमाल करने से दो-तीन फसलें तो बहुत अच्छी हो जाती हैं। लेकिन बाद में जमीन की उत्पादन-शक्ति तेजी से घटने लगती है।"

मुझे यह जानकर भी बड़ा ताज्जुब हुआ कि अब जापानी किसान गाय का भक्त बनता जा रहा है। जब मैं पन्द्रह वर्ष पहले जापान गया था तब वहां गाये नहीं के बराबर थी और दूध पीने का रिवाज भी बहुत कम था। किन्तु इस बार गावों में काफी गाये देखकर मैंने किसानो से इसकी वजह पूछी। उत्तर मिला, "कृत्रिम खाद में कम्पोस्ट मिलाने के लिए गाय से गोबर मिल जाता है और बच्चो के पीने के लिए अच्छा दूध भी।" एक और किसान बोला, "साहब, पहले हम छोटे ट्रैक्टरों का अधिक उपयोग करते थे! लेकिन मशीन न तो दूध देती है और न खाद। इसलिए हमें गायो से बहुत फायदा है।" तीसरा किसान कहने लगा, "हम तो गायों से खेत जोतने का काम भी ले लेते है। गाय को हल में जोतने से उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है और उसकी सन्तान भी अधिक मजबूत होती है।"

हमारे देश मे 'गोभक्त' तो बहुत है, लेकिन वे गाय-माता की रचनात्मक सेवा करना नही जानते। जापानी किसान जिस तरह अपनी गायों की देखभाल व सेवा करता है, वह सचमुच अनुकरणीय है।

भारत में गाय का स्थान धार्मिक दृष्टि से भी इतना ऊंचा इसलिए माना गया है कि वह हमारी कृषि-उन्नति के लिए बहुत आवश्यक है। वह हमें बैल देती है, हल जोतने के लिए,

गोवर देती है खाद के लिए और स्वास्थ्यकर दूध देती है बच्चों के लिए। अत गौ-सवर्धन की ओर हमारा अधिक ध्यान जाना नितान्त आवश्यक है। गौहत्या-विरोधी आन्दोलन के पीछे मूल भावना सही है और हमारे सविधान के अनुसार गौवश की रक्षा करना हमारा पवित्र कर्तव्य हो जाता है।

लेकिन एक और पहलू की तरफ भी हमारा ध्यान जाना जरूरी है। जब मैं गोरखपुर जिले मे किसानो द्वारा हजारो की सख्या में खुदे कुए देखने गया तो बडी प्रसन्नता हुई। सडक के दोनो ओर हरे-भरे खेत थे। अन्न के अलावा केले व पपीते के बगीचे भी लहलहा रहे थे। मैंने मोटर से उतरकर कुछ किसानो से पूछा "क्यों भाई, आप अब तो खुश है न ? कोई दिक्कत तो नही है ?" "बाबूजी, कुओ से तो बडा फायदा हुआ है," एक बूढे किसान ने कहा। और फिर वह आखो में आसू भरकर बोला, "लेकिन हम दिन-भर खेतो में परिश्रम करते हैं और रात मे जगली गायो के झुड-के-झुड आकर हमारी खेती बर्बाद कर जाते है। इसलिए हम बहुत परेशान हैं। हमारी मदद कीजिये।"

यह सुनकर मुझे बडा दुःख हुआ। लेकिन इसका क्या इलाज ? किसान कहने लगे, "हमें कटीला तार दिलवा दीजिये, ताकि हम अपने खेतो की हदबन्दी करले।" लेकिन सारे देश मे कितने किसानो को यह तार दिलवाया जा सकता है ? और फिर जगली गाये तो इन तारो के खम्बो को भी तोडकर खेतो में घुस जायेगी।

इसका असली व स्थायी इलाज तो बहुत गहराई से सोचना

होगा। खेती के साथ-साथ हमे पचायती चरागाहो की व्यवस्था करनी होगी। गाधीजी ने 'गोसदन' की योजना का सुझाव दिया था जहा दुर्वल व निकम्मी गाये रखी जाय और मरने पर उनकी हड्डी, चमड़े, सीग आदि के उपयोग के लिए गामोद्योगो की व्यवस्था की जाय। कुछ गोसदनों को सरकार की ओर से सफलतापूर्वक चलाया भी जा रहा है। लेकिन इस योजना की ओर अधिक ध्यान देने की जरूरत है। ग्राम-पंचायतों को भी ऐसा प्रयत्न करना होगा कि सामूहिक ढग से जगली व आवारा पशुओ से खेती की रक्षा हो सके। हमे गांधीजी की रचनात्मक 'गोसेवा' को व्यापक तौर से अपनाना होगा, नही तो गोरक्षा भी न हो सकेगी और हमारी खेती वर्वाद होती रहेगी। अन्न का उत्पादन वढाने के वजाय हमारी गोमाता किसान के लिए एक अभिशाप वन जायगी।

× × ×

हमारे ऋषियों ने अन्न को ब्रह्म कहा है। उसका अपमान या निन्दा करना महापाप वताया है। किन्तु वडे रज की वात तो यह है कि हम आज भी अन्न की वर्वादी करते ही रहते है। थाली में कुछ जूठा छोड़ने की हमारी आदत पड गई है। विदेशो में प्लेट मे जूठा छोड़ना अशिष्टता माना जाता है, लेकिन हमारे देश में जूठन छोड़ना मानो एक शिष्टाचार ही वन गया है। जव देश के कई हिस्सों में भयकर अकाल पड़ रहा है और करोड़ो गरीव लोग भूख से त्रस्त हैं, उस समय भी हमारे शादी-विवाहों की दावतो मे जूठा अन्न या तो फेंका जा रहा है या मेहतरो को दिया जाता है। और सबसे वड़े दु:ख का विषय तो यह है कि

हमारी रचनात्मक सस्थाओ के सम्मेलनों मे भी इस ओर आवश्यक ध्यान नही दिया जाता। मैने कई समारोहो मे थालियों व पत्तलो में जूठा अन्न फिकते देखा है। शायद इसी राष्ट्रीय पाप का अभिशाप हम आज भोग रहे है। जो समाज या देश अन्न का अपमान करेगा वह कभी सुखी व समृद्ध न हो सकेगा, यह हमारे ऋषियो की भविष्यवाणी है।

अन्त मे एक बात और अन्न का ब्रह्म के रूप मे तभी दर्शन किया जा सकता है जब हम 'ईशावास्योपनिषद' का 'तेन त्यक्तेन भुजीथाः' आदर्श का पालन अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में करते रहे। अगर हम त्याग-भावना के बजाय केवल भोग के लिए पवित्र अन्न का उपयोग करेगे तो जीवन में आनन्द के बजाय यातना ही भोगनी पडेगी और अन्न ब्रह्म के स्थान पर असुर का रूप धारण कर लेगा। भगवान् ने गीता मे स्वयं साफ शब्दों में घोषित कर दिया है कि जो अपने ही लिए अन्न पकाते है, वे पाप खाते है.

भुजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्

और जहांतक मै समझा हू, विनोबाजी के भूदान व ग्रामदान आन्दोलनो का मूलमन्त्र भी यही है·

मिलकर भूमाता की सेवा करो, और अन्न बाटकर खाओ।

: १८ :

अमृत की बूंद

शरद पूर्णिमा की चमकती-सी चादनी में वासौदी वनाकर खाना इस देश में एक आम रिवाज है। शुभ्र चांदनी में सफेद दूध का ध्यान आना स्वाभाविक ही है। पर लोगों का यह भी ख्याल है कि उस दिन चाद से अमृत की एक बूद टपकती है। हरेक व्यक्ति चाहता है कि वह बूद उसकी ही वासौदी में गिरे और उसे अमर बना दे। अमृत की बूद की यह कल्पना केवल किसी कवि की उड़ान हो सकती है। और यह बात लोग नही समझते, ऐसी बात नही। पर फिर भी हम इस कल्पना का ख्याल बडे चाव से करते है और मन में शायद एक नन्ही आशा भी छिपी रहती है—काश, यह बात सच हो। अगर उसमें सच होने की थोड़ी-सी भी सम्भावना हो तो अमर हो जाने का सुनहरा मौका क्यों खोया जाय?

अमृत की बूंद की यह कल्पना है बड़े मार्के की। वह इन्सान के दिल की एक छिपी हसरत का इजहार कर देती है। हम चाहे कहें या न कहें, पर सभी लोग यह चाहते जरूर हैं कि मुमकिन हो तो अमर बन जायं। और इस ख्वाहिश को पूरा करने की कोशिशें अजीब-अजीब शक्लो में जाहिर होती हैं। हजारों वर्ष पहले के राजाओं ने अपनी यादगार कायम रखने

के लिए विशाल 'पिरामिड' खड़े करवाए। उनके अन्दर राजाओं के 'मृत शरीर' आज भी हैं। इतने लम्बे अर्से तक लाशो को भी कायम रखने के लिए क्या-क्या तरकीबें उन्होंने निकाली थी और कौन-कौन से मसाले तैयार करवाये थे, आज भी हमें नही मालूम। पर उनकी सूझ बड़ी तेज थी और उनकी हिकमत की बदौलत उनकी यादगार अभी कायम है [illegible] ही हम उनके अलग-अलग नाम न जानते हों।

शाहजहा ने अपनी प्रेयसी की स्मृति अमर करने के लिए उस ताजमहल का निर्माण करवाया [illegible] और कलाकारो को प्रेरणा और स्फूर्ति देता रहा है [illegible] भी देता है। उसने दुनिया के [illegible] खूबसूरती से खींचा है। वह और [illegible] दुनिया को शाहजहा और मुमताज की [illegible] दिलाता रहेगा, कौन जाने। [illegible] के नीचे कुचल जाने से [illegible] किया, इससे कौन [illegible] है?

आज भी विभिन्न [illegible] के लिए आलीशान [illegible] संस्थाओं का [illegible] हमेशा [illegible] देने का [illegible] दुनिया मे [illegible] पूर्ण [illegible] को अमर [illegible]

देनें की कोशिश करते है जो इतिहास में उनका नाम अमिट अक्षरों में लिखा दे। और वेचारे आम इंसानो की यही तमन्ना रहती है कि उनकी पुश्ते कायम रहे, ताकि उनका वश न डूबे। उनकी कब्र पर नाम लिखा रहे और जो लोग कब्रिस्तान में किसी वक्त आवे, वे उनका नाम ही पडकर उनकी याद कर लें। फिर भी न जाने बेचारे कितने गरीबो को कब्रें भी नसीब नहीं होती और उनका नाम-निशान ही इस दुनिया से हमेशा के लिए उठ जाता है। न जाने कितने फूल विना खिले ही मुरझा जाते है और उनकी हस्ती सदा के लिए मिट जाती है।

पौराणिक साहित्य में समुद्र-मंथन का वर्णन काफी रोचक है। उसका ठीक क्या अर्थ लगाया जाता है, मुझे पता नही। शायद कोई रूपक ही होगा। पर मै तो इस समुद्र-मंथन को मनुष्य के हृदय-मथन के ही रूप में देखता हूं। जो रत्न उस मंथन के वाद वाहर निकले, वे केवल मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं और आकांक्षाओं के प्रतीक है। अमरत्व की भावना मनुष्य मे शुरू से ही रही है और उसी कामना का प्रतीक अमृत है। जिन देवों ने उस अमृत का पान किया, वे अमर हो गये। या यों कहे कि चूकि अमृत पीकर अमर हो गये इसलिए हम उन्हे देवता मानते है। चूंकि सुर अमर है, हम उन्हे पूजते है और उन्हे पूजकर खुद भी अमर होने की लालसा को शायद अनजाने ही व्यक्त करते रहते है।

लेकिन अमर होने की यह ख्वाहिश इंसान में क्योंकर पाई जाती है? क्या इसलिए कि वह इस दुनिया मे हमेशा के लिए जिन्दा रहना चाहता है? अगर हम अपने दिलो को टटोलकर

देखे तो मौत इतनी बुरी चीज नही है, जितनी हम उसे गफलत में समझते हैं। क्या सचमुच हम इस ससार मे सदा के लिए रहना चाहते हैं, ताकि उसके भोग भोगे ?

अगर इस दुनिया में मौत न होती तो हमारा जीवन क्या ज्यादा सुखी होता ? मैं ऐसा नही मानता। अगर मौत न होती तो हम दुनिया से तग आकर खुदकशी करने की कोशिश करने लगते। यूनान के साहित्य मे एक ऐसी कथा है भी। एक नौजवान, जिसको अमरत्व का वर मिला था, अपनी जिदगी से ऊब गया और मामूली इंसानो को बडा भाग्यशाली मानने लगा, जिनके लिए मृत्यु ईश्वर की एक कुदरती देन है। अगर मौत न होती तो इसान अपनी मुहब्बत और हमदर्दी की भावनाओ को धीरे-धीरे खो बैठता। मा-बेटा, भाई-बहन, पति-पत्नी और मित्र एक-दूसरे से प्रेम करते-करते आखिर नीरस बनने लगते और भगवान् से मौत की प्रार्थना करते। मौत का डर हमारे दिलो को जोडे रखता है, एक-दूसरे के सुख-दुख मे हमदर्दी का सचार कराता है और चन्द दिनो की जिन्दगी लड़-भिडकर नही, वल्कि मुहब्बत से पेश आकर बिताने को प्रेरित करता है। हम अनायास गाने लगते हैं .

है बहारे बाग दुनिया चन्द रोज।
... .
फिर तुम कहाँ और मै कहाँ ऐ दोस्तो,
साथ है मेरा तुम्हारा चन्द रोज।

अगर मौत न होती तो फिर हम परमेश्वर की भी क्यो याद करते ? इस दुनिया मे मृत्यु का भय ही हमारी जिन्दगी

का समतोल बनाये रखने में पूरी मदद करता है, नही तो हम ऐश-आराम में डूबकर अपना जीवन ऐसा बना डालते कि पशु-पक्षी भी हमारी ओर देखकर शर्माते और हंसते। मौत के बाद हमे अपने कर्मो के अनुसार ही सुख या दुख हासिल होगा, इसी ख्याल से हम पुण्य कमाने की कोशिश करते है और पाप से दूर रहने का यत्न करते है। अगर इसी दुनिया में हमेशा के लिए रहना हो तो फिर पाप और पुण्य की हम फिक्र क्यो करने लगे? तब तो सुख और दु.ख के निर्माता हम ही बन जाते और दूसरो को दबाकर और चूसकर सदा अपने-अपने आराम की फिराक मे ही रहते।

हम फिर अमरता के पीछे इतने पागल क्यो रहते हैं? हम क्यो चाहते है कि हमारा नाम हमेशा कायम रहे और हमारी कारगुजारियां इस दुनिया में सदा चमकती रहे? शायद इसीलिए कि इस बदलते, बिगड़ते और क्षणिक संसार में हम अपने जीवन की यादगार को अमर बना दें। विनाश में अविनाशी हस्ती और नाम को स्थापित कर दे। मरण के बीच अमरता का निर्माण कर सके।

असली बात तो यह है कि हम अपनी आत्मा की अमरता नही पहचानते है, पर यह हमारी आत्मा का ही अमरत्व भाव है जो इस दुनिया मे अपना नाम कायम रखने की ख्वाहिश के रूप में जाहिर हुए बिना नही रहता। अगर हम अपने अविनाशी स्वरूप को जानते तो फिर नश्वर संसार में अपनी यादगार अमर करने की फिक्र न करते। पर अपनी हस्ती व नाम को कायम रखने की कोशिश कर हम यही अनजाने प्रकट करते है

कि हमारे अन्दर ऐसा कोई शाश्वत तत्व है जो हमारे जीवन पर अपनी झलक व छाया डाले बिना नही रहता। मरने के बाद हमारा क्या होगा, हम जानते नही। इसीलिए अपनी याद-गार दुनिया मे ही स्थायी और सुरक्षित कर देना चाहते है। यह प्रयत्न है तो बिलकुल बेकार, हमारा भोलापन ही है, क्योकि मरने के बाद हमें इससे क्या कि हमारा नाम कायम रहता है या नही। हमें उसका कोई इल्म न हो सकेगा। पर हमारे अन्तर-शब्द की गूज अनायास ही हमारे दिलो मे इस तरह की आकां-क्षाए पैदा कर देती है।

किन्तु क्या अमरता का इस तरह पीछा करने से हम अमर हो सकते हैं ? आजतक न जाने कितने राजा और उनके साम्राज्य फले-फूले और फिर मिट्टी में मिल गये; न जाने कितने महल बडी कुशलता से बने, शान-शौकत से सजे रहे और फिर बेचिराग हो गये; न जाने कितने महान् ग्रथ लिखे गये, जिनका आज नाम-निशान भी नही है, न जाने कितनी सस्थाए कायम की गईं, जिनका कोई भी लेखा-जोखा मौजूद नही; न जाने कितने राजनीतिज्ञ और नेता अपने-अपने समय मे जनता के देवता बने रहे और बाद की पीढियो को उनका नाम भी याद न रहा।

दूसरी ओर ऐसे भी काफी ग्रथ है, जिनके लेखकों के नाम व जीवन के बारे मे हम नही जानते, पर जिनकी हस्ती करोडों लोगो के दिलो में है और रहेगी। वेदों, पुराणो व उपनिषदो के सभी कवियो के ठीक नाम हमें नही मालूम। उन साधक कवियों ने यह भी फिक्र न की कि उनका नाम अमर हो। पर इन महान्

ग्रथों का स्थान दुनिया के अन्त तक—अगर दुनिया का कोई अन्त होगा—अवश्य रहेगा। अजन्ता-एलोरा जैसे कला के ऐसे वेशकीमती और वेमिसाल खजाने हैं, जिनके शिल्पी और चित्र-कारों ने अपना नाम भी बताने की जरूरत न समझी। हिन्दुस्तान और अन्य देशो में न जाने कितने साधु-संत हो गये, जिनके 'वचन' और 'वोल' आज भी लाखो की जवानो पर हैं, लेकिन जिनकी जिन्दगी के हाल का हमें जरा भी पता नही। इन कवियो, कलाकारों, साधु-सतो ने अपने हृदय की प्रेरणा से अमूल्य व अमर चीजो का निर्माण कर दिया, पर अपना नाम अमर करने की इच्छा से नही। उन्होंने अपनी जिन्दगी वहुत ऊची सतह तक उठाई, अथक तपस्या की और दुनिया को ज्यादा सुखी और खुशनुमा वनाने का प्रयत्न किया, पर खुदी और अहंकार के भाव से नही। उन्होंने कला का निर्माण कला के लिए नही किया और न जीवन ही के लिए। इन झझटों में उन्हे पड़ने की जरूरत ही नही महसूस हुई, क्योंकि उनका जीवन ही जीती-जागती कला थी और ऐसी जीवन-कला ही अमर हो सकती है।

एक नन्हा वच्चा शुभ्र चांदनी में अपनी परछाई पकड़ने के लिए इधर-से-उधर घुटनुओ चलता। छाया पकडने के लिए हाथ वढाता, कभी आगे वढता, कभी पीछे घूम जाता, पर वह छाया क्योंकर पकड में आती? उसकी मा वहुत देर तक यह तमाशा देख-देखकर हंसती रही, खुश होती रही। पर जव वच्चा थक गया तो मा को रहम आया। उसने वच्चे के पास जाकर उसका एक हाथ उठाकर उसके सिर पर रख दिया। वच्चे ने देखा कि

परछाई उसकी पकड मे आ गई। वह खिलखिलाकर हँस पडा और फिर मा ने उसे चूमकर अपनी गोद मे उठा लिया।

यही खेल हम खेल रहे हैं। दुनिया में अमरता हासिल करने के लिए तरह-तरह के उपाय करते है, पर वह हाथ नही लगती। लेकिन जिन्होने अपने स्वरूप को पहचान लिया है, वे इस फिजूल के झमेले मे नही पडते। अमरता तो उनके दिल में ही समाई हुई है। वे अपना अनन्त आनन्द दुनिया को भी बाटते रहते हैं, जगत की सेवा में ही अपनी सारी शक्तियां जुटा देते हैं। यह उन्नत ससार ही उनका अमर स्मारक है :

"वे अपने पीछे कोई स्मारक नही छोडते, बल्कि अपने जीवन से इस ससार को ही अधिक अच्छा बना जाते है !"

: १९ :

'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'

अमरीका ससार का सवसे धनी व सम्पन्न देश माना जाता है। पहले वहा करोडपतियों की भरमार थी, अब अरवपतियों की। किन्तु वहा न राष्ट्रपति सुरक्षित है, न राष्ट्रपति का चुनाव लडनेवाले। कुछ वर्ष पहले प्रेसीडेट केनेडी की निर्मम हत्या हुई और अब उनके छोटे भाई रॉवर्ट की। नीग्रो के महान् नेता डॉ० मार्टिन लूथर किग का भी हिसा की वेदी पर वलिदान हो गया।

रॉवर्ट केनेडी व डा० किग के हत्यारो के जीवन का इन दिनों काफी गहराई से अध्ययन किया जा रहा है। इस सम्वन्ध में एक प्रकार की 'रिसर्च' ही हो रही है और अमरीका में हिसक प्रवृत्तियो की वृद्धि के कारणो की खोज वड़ी गम्भीरता से की जा रही है। एक नये विज्ञान की ईजाद हुई है, जिसे 'साईको-वायोलोजी' कहते है। हाल ही में अमरीका की सुविख्यात साप्ताहिक पत्रिका 'लाइफ' मे एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें इस नये विज्ञान द्वारा अध्ययन करने पर पता चला है कि हिसक वृत्ति का वुनियादी कारण है संयम का अभाव। हत्यारों का शरीर उनके मन के वश में नही रहता है। वे स्वयं नही समझ पाते कि हिसा पर क्यों उतारू हो जाते है। शरावखोरी, इन्द्रिय-विलास व विभिन्न प्रकार की स्थूल उत्तेजनाओं की वजह से उनकी नसें

बेकाबू बन गई है। सचमुच ही यह भौतिकता के एकागी विकास का अभिशाप है।

हमारे प्राचीन ऋषियो ने तो हजारो वर्ष पहले ही ऊची आवाज से घोषित कर दिया था—'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः' अर्थात् केवल वित्त या धन से मानव को सतोष नही हो सकता। ईसा ने भी अपने शिष्यो को समझाया था—"मनुष्य सिर्फ रोटी के सहारे नही जीता।" किन्तु वर्तमान युग मे आर्थिक सयोजन का मूल उद्देश्य राष्ट्रीय आमदनी बढाना ही बन गया है गुण-विकास की ओर किसी प्रकार का ध्यान नही दिया जा रहा है। भारत की पचवर्षीय योजनाओं में नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यो का उल्लेख तो किया गया है, लेकिन व्यावहारिक ढग से उनपर बल नही दिया गया है। एशिया व अफ्रीका के लगभग सभी विकासशील राष्ट्रो का यही हाल है। यह तो स्पष्ट ही है कि वे कितना भी प्रयत्न करे, आर्थिक उन्नति में अमरीका की बराबरी कदापि नही कर सकेंगे। फिर भी उस ओर ही बेतहाशा दौड जारी है। जाहिर है कि इसी मार्ग पर चलते रहने से जो हाल आज अमरीका का हो रहा है, उससे भी बुरी हालत भारत जैसे अर्ध-विकसित देशो की होगी।

× × ×

इसका यह अर्थ न लगाया जाय कि आर्थिक विकास कोई बुरी चीज़ है। गरीब देशों में बेकारी व निर्धनता को दूर करना हमारा परम कर्त्तव्य बन जाता है। बहुत वर्ष पहले मैंने १९४२

---

१ Man does not live by bread alone

की अगस्त क्रान्ति के बाद 'गांधीवादी योजना' तैयार की थी। एक दिन सेवाग्राम में इसकी चर्चा करते हुए मैंने पूज्य बापू से पूछा, "आपकी विचारधारा के अनुसार भारत का जीवन-स्तर कितना ऊचा होना चाहिए ? सन्तुलित भोजन, वस्त्र व मकान का निम्नतम क्या परिमाण हो ?" गाधीजी ने तुरन्त उत्तर दिया, "उद्योगपतियो की 'वम्बई-योजना' की अपेक्षा मेरी योजना में जनता का रहन-सहन ज़रा भी कम न रहेगा, किन्तु मेरे जीवन का आदर्श सिर्फ आर्थिक विकास पर आधारित नहीं है। केवल 'जीवन-स्तर' पर नही, मैं 'जीवन-उदय' पर जोर देता रहा हूं। सरल जीवन व उच्च चिन्तन हमारी ज़िन्दगी का ध्येय होना जरूरी है, नही तो हम भी गलत प्रवाह मे वह जायेंगे न ?"

कुछ समय पहले फ्रान्स में भी तो कुछ इसी तरह की घटनाएं घटी थी। अमरीकन डालर के बाद शायद संसार की मुद्राओं में फ्रेंक का ही जोर है। वहा भी राष्ट्रपति दगोल के शासन के विरुद्ध हिंसक क्रान्ति हुई। लेकिन किसलिए ? यह किसीको ठीक तौर पर पता ही नही। वहा के नवयुवक अपने वर्तमान जीवन से ऊब गये है। धन तो उनके पास काफी है, भोग-विलास भी, किन्तु उससे उन्हे सन्तोष नही, उनकी तृप्ति नही। उनके दिल और दिमागो में शान्ति नही है। उनके मनों में किसी चीज की भूख है, लेकिन वे स्वय नही जानते कि किस चीज की भूख है। एक उच्चकोटि के विचारक ने कहा है कि अमरीका व फ्रान्स में 'भौतिक वैभव की करुण कथा' लिखी जा रही है। उर्दू शायर अकबर ने ठीक ही लिखा है :

जिसने दुनिया को ही पाया था, वह सब खोके मरा।

× × ×

एक बार अमरीका के मशहूर अर्थशास्त्री प्रो० गॉलब्रेथ, जो कुछ वर्ष भारत में अमरीकी राजदूत भी रह चुके है, हमसे योजना कमीशन में मिलने आये। उन दिनो वह अफ्रीका व दक्षिण अमरीका के कई राष्ट्रो का भ्रमण करके वापस लौटे थे। उन्होंने हमसे बडे भावपूर्ण शब्दो में कहा, "मै भारत के भी बहुत से देहातों मे घूमा हू। यहा के किसानों के चेहरो पर मैने हमेशा एक प्रकार की चमक देखी है। वह उनकी गरीबी को एक प्रकार से सम्पन्न बना देती है। किन्तु अफ्रीका व दक्षिण अमरीका के ग्रामीण क्षेत्रों की निर्धनता वडी दर्दनाक है, करुण है।"

जब मैने उनसे इसका अर्थ पूछा तो उन्होंने गम्भीर स्वर में समझाया, "मेरे ख्याल से भारत के गरीब किसान के चेहरे की रोशनी का रहस्य है उसकी आध्यात्मिक आत्म-निर्भरता और उसका स्वाभिमान। आप लोग कृपया ऐसा कोई काम न करे जिससे उसके ये सुनहरे गुण किसी कदर कम हो जाय।" प्रो० गॉलब्रेथ के ये उद्गार सुनकर मुझे महाभारत के महान् कवि की वह वाणी याद आई, जिसमे भारत को 'कर्म-भूमि' कहा गया है और अन्य देशो को 'भोग-भूमि'।

× × ×

हम अपनी पचवर्षीय योजनाओ के लिए विदेशो से काफी आर्थिक सहायता ले रहे है। कुछ हद तक दूसरे राष्ट्रो से मदद लेने में कोई हर्ज नही है। अमरीका ने भी प्रारम्भ में इंगलैंड व यूरोप से पूंजी की सहायता ली थी और रूस ने अमरीका से।

खास तौर पर तकनीकी ज्ञान व विशिष्ट यन्त्रों से लाभ उठाने में किसी प्रकार की आपत्ति नही हो सकती। हां, विदेशी ऋण व अनुदान के नीचे दब जाना किसी भी स्वाभिमानी राष्ट्र के लिए हितकर नही होगा। हरेक मामले में हमें कुछ मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। यह सिद्धान्त व्यक्ति व देश दोनों के लिए आवश्यक है। यदि हम स्वावलम्बन की वृत्ति त्यागकर अन्य राष्ट्रों पर जरूरत से ज्यादा निर्भर हो जायगे तो हमारी तटस्थ विदेश-नीति असन्तुलित बनेगी और हमारी आजादी ही खतरे में पड़ जायगी। इसीलिए गांधीजी 'स्वदेशी' भावना को इतना महत्व देते थे और हमें आत्म-निर्भरता की ओर ले जाना चाहते थे। बिना पुरुषार्थ व स्वावलम्बन के हमारा तेज कम हो जाता है। कविवर रहीम ने बड़ी आतुरता से लिखा था .

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती, मानुस, चून॥

जिस प्रकार मोतियों के लिए पानी की जरूरत है, उसी तरह मनुष्यों व राष्ट्रों के लिए 'आत्म-सम्मान' बिल्कुल आवश्यक है। बिना 'पानी' के हम फीके पड़ जाते हैं।

आचार्य विनोबाजी अक्सर कहते है कि स्वतन्त्रता के बाद गांधीजी द्वारा सचालित कई संस्थाओं ने सरकारी आर्थिक सहायता स्वीकार कर अपनी आब घटा ली है। उनकी काया तो फैल गई है, बड़ी इमारतें बन गई हैं और कार्यकर्ताओं की संख्या भी बढ़ गई है, किन्तु उनका तेज घट गया है। आजादी की लड़ाई के समय उनके पास धन व साधन अपेक्षाकृत काफी कम थे, लेकिन उनके सेवकों में जोश था, त्याग का जज्बा था।

पण्डित जवाहरलालजी ने भी कई बार जिक्र किया कि सरकार का हाथ जरा भारी होता है। "जिस सस्था पर वह रखा जाता है, अपने बोझ से उसे दबा देता है, उसकी चमक को फीका कर देता है।" इसीलिए बापूजी ने स्वराज्य मिलने के बाद भी वर्धा व सेवाग्राम की रचनात्मक सस्थाओ को आगाह कर दिया था कि वे 'आजाद भारत' के शासन से भी आर्थिक मदद लेने का मोह न करे। कितने दूरदर्शी व व्यावहारिक थे हमारे राष्ट्रपिता! वे हमें बार-बार समझाते थे कि सार्वजनिक सस्थाओ को सिर्फ एक-एक साल का बजट बनाकर धन एकत्र करना चाहिए। अधिक राशि एक साथ जमा करने की कोशिश करना उचित नही है। अगर हमारा काम सचमुच उपयोगी है तो जनता उसे सहायता देकर अवश्य चालू रखेगी। यदि सस्था सच्चे अर्थ में फायदेमन्द नही है तो धन के अभाव मे उसका बन्द हो जाना श्रेयस्कर है न? और सच बात तो यह है कि कोई भी सस्था केवल वित्त के आसरे नही चल सकती। अगर उसमे ऐसे लगनशील व तपस्वी सेवक हों जिनके प्रति जनता की श्रद्धा है तो वह सुचारु रूप से चलती रहेगी। किसी नई सस्था को शुरू करने के पहले गाधीजी पूछते थे, "इसको चलाने के लिए कार्यकर्त्ता कौन है? मुझे धन की चिन्ता नही है। वह तो जनता स्वय देगी। अच्छा सेवक चाहिए।"

× × ×

भारत में हजारो वर्षों से एक सन्तुलित व आध्यात्मिक जीवन का आदर्श जारी रहा है। प्राचीन ऋषि चाहते थे कि हम सौ वर्ष तक जीवित रहे। किन्तु सिर्फ सासारिक समृद्धि सम्पन्न

करने के लिए नही। उनका आशीर्वाद था

जीवेम शरदः शतम्। बुध्येम शरदः शतम्।
रोहेम शरदः शतम्। पूषेम शरदः शतम्।।

(—अथर्ववेद)

अर्थात्, हम सौ वर्ष जीवित रहे, अपने ज्ञान को बढ़ाते रहे, उन्नति को प्राप्त हो और उत्तरोत्तर दृढता प्राप्त करें !

और विशेष बात तो यह है कि अर्थशास्त्र के महान् रचयिता कौटिल्य ने भी यही उपदेश दिया कि जीवन में सुख की स्थापना के लिए वित्त नही, धर्म की नितान्त आवश्यकता है :

सुखस्य मूल धर्मः।

: २० :

दुर्लभं भारते जन्म'

विद्यार्थी-जीवन में हमें कविवर मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' से राष्ट्रीयता की गहरी प्रेरणा मिली थी। अंग्रेजी कवि लोगफैलो की भी मशहूर कविता 'दिस इज माई ओन माई नेटिवलैण्ड' हमे कंठस्थ थी। इकबाल की ये पंक्तियां हम सभी गाया करते थे

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।
हम बुलबुलें है उसकी, वह बोस्तां हमारा।

उन दिनों 'वन्दे मातरम्' का राष्ट्रीय गीत तो अंग्रेजी राज्य के प्रति बगावत का प्रतीक बन गया था। फिर भी वह हरेक की जबान पर रहता था। पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी की 'फूल की चाह' शीर्षक कविता भी बहुत लोकप्रिय बन गई थी .

मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जायें वीर अनेक॥

और हमारे देश के सम्बन्ध में तो महाभारत के महाकवि ने हजारो वर्ष पहले ही घोषित किया था—'दुर्लभं भारते जन्म।' रामायण के कवि-सम्राट् वाल्मीकि ने स्वय भगवान् राम की

श्री द्वारा मातृभूमि-भक्ति का प्रेरक सन्देश दिया था :

अपि स्वर्णमयी लंका, न मे लक्ष्मण रोचते,
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी !

काठमाण्डू में स्थित नेपाल की राष्ट्रीय रंगशाला के सामने ये पंक्तिया बड़े अक्षरों में लिखी हुई थी। हम भी उन्हें बारबार गुनगुनाते रहते थे, क्योंकि भारतीय राजदूत की हैसियत से हमें उस जगह विविध कार्यक्रमों में अक्सर जाने का अवसर मिलता रहता था।

× × ×

राष्ट्र-प्रेम तो सभी देशों के नौजवानो में पाया जाना स्वाभाविक ही है। भारत को स्वराज्य प्राप्त होने के बाद एशिया व अफ्रीका के बहुत-से राष्ट्र जाग उठे और उन्होंने परतन्त्रता की जजीरो को तोड फेंका। आज़ादी के पिछले इक्कीस वर्षो के बीच दो बार भारत पर चीन व पाकिस्तान की तरफ से आक्रमण भी हुए। उस समय सारा देश एक मजबूत दीवार की तरह उठ खड़ा हुआ, किन्तु खतरा टल जाने के बाद हम फिर अपनी छोटी-मोटी समस्याओ व संघर्षों मे फंस जाते हैं और भारत की एकता को गहरी ठेस पहुंचाते हैं। जैसे आचार्य काकासाहब कालेलकर कहा करते हैं, हम एक बड़े राष्ट्र के छोटे लोग बन जाते हैं और अशोभनीय व्यवहार करने लगते हैं। हमारे राजनैतिक नेता हमें बार-बार स्मरण दिलाते रहते हैं कि अभी बाहरी आक्रमण का भय दूर नही हुआ है, ताकि हमारी एकता कायम बनी रहे। लेकिन राष्ट्र-प्रेम जगाने के लिए क्या हमें विदेशों के हमलों की राह देखते रहना है ? क्या देश की गरीबी

व बेकारी की ऐसी जटिल समस्याएं हमारे सामने नही खड़ी है, जिन्हे परास्त करना हमारा परम कर्तव्य है? और ये मसले तभी हल किये जा सकते है जब हम राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हो!

इसके अलावा प्रत्येक राष्ट्र की कुछ विशेषताए होती है, जिन्हे हम उस देश की 'आत्मा' या अंग्रेजी मे 'जीनियस' कहते हैं। किसी राष्ट्र में कला व साहित्य की विशेष प्रतिभा दिखलाई देती है, कही क्रीडा, खेल-कूद व 'एडवेन्चर' का माद्दा खास तौर पर विकसित होता है। कुछ देशों में उद्योग, परिश्रम व सामाजिक अनुशासन के गुणो का दर्शन होता है, तो कही विनोदप्रियता व उच्छृङ्खलता का वातावरण पाया जाता है। हमारे पूर्वजों ने भारत को 'कर्म-भूमि' के नाम से पुकारा है। यहां 'धर्म-भावना' का विशेष महत्व प्राचीन काल से रहा है। इसलिए इसे 'धर्म-भूमि' भी कहा जाता है।

× × ×

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने पाश्चात्य सस्कृति व भारतीय सभ्यता का बुनियादी अन्तर बड़े मार्मिक शब्दो में बयान किया है। वे लिखते है, "जब यूरोप का एक मजदूर व किसान दिनभर काम करके थका हुआ शाम को घर आता है तो अपनी थकान मिटाने के लिए शराब पीता है और अनाचार करता है। किन्तु भारत का किसान अपनी थकान भजन-कीर्तन द्वारा भूल जाता है और भगवान् की भक्ति में लीन हो जाता है।"

दोनो सभ्यताओ में हम एक और विशेष अन्तर देखते है। विदेशो में अगर आप पहाडों की चोटियो पर चढ़कर किसी रमणीय स्थान पर पहुचेंगे तो वहां एक 'बार' या शराब की

दूकानें देखेंगे। लेकिन भारत की यह विशेषता है कि इस प्रकार के प्राकृतिक स्थलों में निश्चित ही एक कलापूर्ण मन्दिर या तीर्थ के दर्शन मिलेंगे। हमारे देश में पर्वतारोहण के साथ-साथ धर्म-भावना का समावेश रहा है। इसीलिए आज हम गंगोत्री, बदरीनाथ, अमरनाथ, कैलास व गौरीशंकर के भव्य दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।

विदेशों में नाम कमाना हो तो करोड़पति व अब तो अरबपति बनना जरूरी होता है, या तो फिर बड़ा राजनैतिक नेता जिसके हाथ में महान् सत्ता हो। किन्तु भारत में तो एक 'सन्त' व 'महात्मा' के पीछे ही सारी जनता चलती है और उसका जय-जयकार करती है।

भारत की संस्कृति महलों व प्रासादों में नहीं, वनों व मुनियों के आश्रमों में फलती-फूलती रही है। यहां के राजा-महाराजा अपने गुरु-जनों के आदेशों के अनुसार ही राज्य संचालित करते रहे हैं। वशिष्ठ, विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य व समर्थ रामदास की गुरु-परम्परा किसी और देश में खोजे भी नहीं मिल सकेगी। भारत-भूमि में वह सहज-प्राप्त है।

यदि हम इन प्राचीन परम्पराओं को दरगुजर कर भारत को उन्नत बनाने का प्रयत्न करेंगे तो ठोकर खाकर गिरेंगे और संसार के सम्मुख हंसी के पात्र बनेंगे। दुनिया आज भारत की ओर इसलिए नहीं देख रही है कि यहां भी ऊंची इमारतें, विशाल बांध व बड़ी फैक्टरियां स्थापित हो रही हैं! संसार तो हमारे राष्ट्र से कुछ और ही अपेक्षा रखता है, क्योंकि वह गांधी व टैगोर का देश माना जाता है। जब हम सन् १९४९ में अमरीका की

हारवर्ड यूनिवर्सिटी के विख्यात् अर्थशास्त्री प्रो० शुमपीटर से मिले तो उन्होंने बडी नम्रता मे किन्तु आग्रहपूर्वक कहा, "मेरी ओर से अपने देशवासियों को एक सदेश जरूर दीजियेगा, और वह यह कि वे भूलकर भी हमारी नकल न करे। हमारे पास धन है, किन्तु वह अमूल्य वस्तु नही है, जो भारत के पास है। ससार भारत से अध्यात्म की ज्योति पाने की आशा रखता है।" कुछ इसी प्रकार की भावना डा० आइन्स्टाइन ने व्यक्त की थी। गाधीजी के प्रति तो उनकी अगाध श्रद्धा थी। उन्होने कहा था, "आनेवाली पीढिया तो यह विश्वास भी नही कर सकेगी कि गाधी जैसा हाड-मास का कोई शख्स इस पृथ्वी पर सचमुच कभी चला था।"

× × ×

पूज्य बापू के स्वप्नो के भारत मे नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों को प्रमुख स्थान तो था ही, उनकी हार्दिक आकाक्षा थी कि आज़ाद हिन्दुस्तान दुनिया को अपनी प्राचीन सस्कृति के अनुरूप एक नई रोशनी दे। किन्तु वह यह नही चाहते थे कि भारत ससार के अन्य राष्ट्रो से अलग-थलग पड जाय और एक सकुचित वृत्ति का अनुसरण करे। इसीलिए उन्होनें बहुत साफ शब्दो में लिखा था—"मैं नही चाहूंगा कि स्वतन्त्र भारत का भवन सभी ओर दीवारो से घिरा रहे और उसके खिडकी-दरवाजे बन्द रहें। सभी देशो की सस्कृतियो का प्रवाह हमारे मकान के अन्दर आवश्यक स्वतन्त्रता से बहे। लेकिन मैं यह कभी बरदाश्त नही करूगा कि इन प्रवाहो से मेरे पैर ही उखड़ जाय।" इसका यही भावार्थ है कि हम सभी दिशाओं से अच्छे विचार

वे गुण-ग्रहण की दृष्टि रखें, लेकिन हमारे पैर हमारी धरती पर मजबूत रहें। हम विदेशी हवा में उड़ न जायं, दूसरों के अनुकरण के प्रवाह मे बह न जायं।

× × ×

अगर हम जरा बारीकी से अपने प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करे तो पायंगे कि वेदों में भी 'विश्व-मानुष' के आदर्श का जिक्र है। ऋग्वेद ने तो यही प्रार्थना की है कि चारों दिशाओं से शुभ विचारों का प्रवाह जारी रहे—"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वत।" अथर्ववेद ने भी यही जाहिर किया है कि सम्पूर्ण पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं—"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या."। कितना विशाल व व्यापक दर्शन था हमारे प्राचीन विचारको व ऋषियो का। वे ग्रामों, आश्रमों व वनों मे रहते थे, किन्तु उनका चिन्तन केवल विश्वव्यापी ही नही, ब्रह्माण्डमय था।

कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कुछ इसी प्रकार के विचार दूसरे ढग से व्यक्त किये है। उन्होंने भारतीय परम्परा की उपमा गंगाजी के निरन्तर प्रवाह से दी है। उसमें कई दिशाओं से दूसरी नदियों के जल का भी प्रवेश होता है; वे गंगा मे मिलकर एक-रूप हो जाती है, गंगा ही बन जाती है। किन्तु यदि मिलनेवाली नदियों द्वारा गंगाजी मे बाढ़ आ जाय तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है और चारों ओर बरबादी फैल जाती है। इसी तरह यदि हम विदेशों के गुणों को अपनाकर उन्हे हजम कर ले और अपना व्यक्तित्व भी कायम रख सके तो सब दृष्टि से कल्याणकारी है। लेकिन अगर बाहरी प्रवाह से हमारा सन्तुलन ही बिगड़ जाय

तो फिर हम विनाश की ओर तेजी से बह जायगे।

हम जरा वृक्षो की ओर भी नजर डाले। ऊचे पेड़ खुली हवा में कितनी शान से खड़े रहते हैं। चारो ओर से उन्हे शीतल मन्द सुगन्ध वायु का लाभ मिलता रहता है। वे स्वय कडी धूप सहते हैं, लेकिन दूसरो को शीतल छाया प्रदान करते हैं। सूरदासजी ने गाया है .

वृक्षन से मत ले, मन तू वृक्षन से मत ले।
धूप सहत अपने सिर ऊपर,
और को छांह करेत !

पर उनकी गहरी जड़े धरती मे रहती हैं, वही से उन्हे जीवन-शक्ति सदा प्राप्त होती रहती है। यदि जडे कमजोर हो और जमीन के ऊपर निकल आवे तो फिर वह वृक्ष अधिक दिन गौरव से अपना सिर ऊंचा न रख सकेगा। हवा के झोकों से वह गिरकर समाप्त हो जायगा। यही हाल राष्ट्रो का है। यदि वे अपनी सस्कृति की भूमि पर स्थिर रहकर दुनिया से सीखने का प्रयत्न करते हैं तो उनका विकास सर्वांगी होता है, लेकिन अगर वे अपना राष्ट्रीय व्यक्तित्व ही खो बैठते हैं तो कही के नही रहते।

× × ×

गाधीजी हमे अक्सर समझाया करते थे कि राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता मे मूलतः कोई आपसी विरोध नही है। अन्तर्राष्ट्रीय बनने के लिए यह जरूरी नही है कि हम दुनिया के सभी देशों मे हवाई जहाज से उड़कर जाते रहे। हां, जितना बिल्कुल आवश्यक हो उतना विदेशो से सम्पर्क रखना अच्छा है।

किन्तु [illegible] तो सेवागाम में रहकर भी केवल संसार से क्या ब्रह्माण्ड के जीवन से एकरस रहते थे। असली सवाल है दृष्टि का। अगर हमारे दिल उदार है और दिमाग व्यापक है तो फिर हम जहां कहीं भी रहे, विश्व-भावना से ओतप्रोत रह सकते है।

और अन्त में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का आधार राष्ट्रीयता ही हो सकती है। यदि हम अपने राष्ट्र के एक अच्छे नागरिक व सेवक है तो हमारी खुशबू दुनिया के और देशो मे भी सहज फैलती रहेगी। किसी भी देश मे किया हुआ अच्छा काम धीरे-धीरे दूसरे राष्ट्रों पर भी असर डालता ही है। आचार्य विनोबा का भूदान व ग्रामदान आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुका है, यद्यपि विनोबाजी ने पाकिस्तान के सिवाय और किसी विदेश की धरती पर अबतक पैर नही रखा है, किन्तु वह तो गाव-गाव में घूमते हुए भी 'जय जगत्' का नारा लगाते रहते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आदर्श उनकी प्रत्येक सास में समाया हुआ है। लेकिन उनके पैर अपने देश की धरती पर मजबूती से जमे हुए हैं।

०